प्रकाशक:—
भैयरचन्द सीपाणी,
उदरामसर (बीकानेर)

प्रथमावृत्ति १००० } साहित्य प्रचारार्थ मूल्य ।।।) { वसंतपंचमी, वि.सं.२००४.

मुद्रक —
रतनसिंह जैन
श्री गुरुकुल मुद्रणालय
ब्यावर

में आगे रहे बिना नहीं रह सकते। सोगानीजी बड़े ही मिलनसार व्यक्ति हैं। धर्म पर गाढ़ श्रद्धा रखते हैं और सेवा-कार्य में तत्पर रहते हैं। स्वर्गीय पूज्य श्री के व्याख्यानसाहित्य के बड़े ही प्रेमी हैं।

आपके पिता सेठ माणकचन्दजी सा. सोगानी, सेठ इन्द्रचन्दजी गणेशदासजी सा. के प्रधान मुनीम और साझीदार थे। सेठ गणेशदासजी आपके ऊपर पूरा भरोसा रखते थे और दूसरे लोग उनकी प्रामाणिकता के कायल थे। उनकी प्रामाणिकता एक निष्ठावान् श्रावक के योग्य ही थी। वे सफल व्यापारी थे। समाज में उन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

सेठ माणिकचन्दजी का जन्म वि. सं. १९२० के माघ शुक्ल पक्ष में और निधन सं. १९८३ के कार्तिक में हुआ। वि. सं. १९६३ को फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को श्री भैंरवचन्दजी सा. का जन्म हुआ। यह सेठ सा. के इकलौते पुत्र थे। मगर आपकी धर्मनिष्ठा का ख्याल कीजिए कि पुत्र के उत्पन्न होते ही आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया। आपने सोचा कि जब कुल दीपक एक पुत्र प्राप्त हो गया है तो फिर विषयभोग की कीचड़ में रहने से क्या लाभ है?

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

श्रीमान् चेनचन्दजी सा. ऐसे आदर्श और धर्मनिष्ठ पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। आपके भी दो पुत्र हैं—चि. भंवरलाल और चन्द। आप आजकल अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं।

'रामवनगमन' का यह दूसरा भाग अपने पिता श्री की स्मृति आपकी ओर से लागत से भी आधे मूल्य में भेंट किया जा रहा है हम अपनी और पाठकों की ओर से सोपानीजी को धन्यवाद देते हैं सोपानीजी साहब से हमें भविष्य में अनेक आशाएँ हैं।

श्रीहितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम का आभार तो प्रत्येक के साथ जुड़ा हुआ ही समझना चाहिए। उसी की ओर से व्याख्यान साहित्य के आधार पर ही यह सब प्रकाशन हो रहा है।

निवेदक :—

चम्पालाल बांठिया,

मंत्री,

श्री जवाहर साहित्य-समिति।

भीनासर
(बीकानेर)
१-१-४८

स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?

तिरिया-चरित्र बड़ा गहन होता है। उसका पता सहज नहीं है। कदाचित् कांच में पड़ने वाला पकड़ में आ जाए, मगर स्त्री चरित्र नहीं आता जा सकता। आग में क्या नहीं जल जाता? समुद्र में क्या नहीं सकता? स्त्री क्या नहीं कर सकती?

कोई कोई कहने लगे—रानी को दोष देते हो, पर की बुद्धि कहाँ मारी गई है? राजा अगर स्त्री के वश होते तो यह दशा क्यों होती? कैकेयी राम की सौतेली म है, मगर राजा तो सौतेले बाप नहीं थे! कैकेयी ने भरत पक्ष किया मगर राजा के लिए तो राम और भरत स थे, फिर उन्होंने क्यों विवेक भुला दिया? एक औरत बात मानकर इतना बड़ा अन्याय करने पर जो उतारू गया है, उस राजा की बुद्धि नहीं बिगड़ी, यह कौन सकता है! राजा को प्रजा की इच्छा का भी तो ख रखना था लेकिन

[illegible]

बीमारी असाध्य हो जाती है। बुद्धिमान् मनुष्य बीमारी के असाध्य होने से पहले ही उसका उपचार करते हैं। किसी को रोग देने से क्या हाथ आएगा? रानी कैकेयी ने वर मांगा है। बिगड़ी को बनाना अब उन्हीं के हाथ में है। किसी उपाय से अब कैकेयी को समझाना उचित है। स्त्रियों का काम स्त्रियों से ही भलीभांति हो सकता है। स्त्री ही स्त्री को समझा सकती है। अतएव कैकेयी को समझाने के लिए कुछ बुद्धिमती स्त्रियों को भेजना चाहिए। रानी के कारण अगर बना काम बिगड़ गया तो बिगड़ा काम बन भी सकता है।

कैकेयी के पास स्त्रियों का प्रतिनिधि मंडल

आखिर सब की सम्मति से यह निश्चय हुआ कि अयोध्या की चुनी हुई कुछ बुद्धिमती स्त्रियाँ कैकेयी को समझाने के लिए भेजी जाएँ। ऐसी स्त्रियों का एक प्रतिनिधिमण्डल बनाया गया। उसमें जाने वाली स्त्रियाँ जानती थीं कि जो कैकेयी [illegible] [illegible] [illegible] पेट के [illegible] बहुत [illegible]

अयोध्या में—राम की जन्मभूमि में और जहाँ सीता आकर बनी थी वहाँ बुद्धिमती स्त्रियों का होना साधारण बात है।

स्त्रियों ने सोचा—रानी चाहे समझे या न समझे, पर अपनी गाँठ की अक्ल गँवाना ठीक नहीं है। अगर हम सब अलग-अलग बातें करने लगेंगी तो किसी भी बात का फैसला नहीं हो पाएगा। इसके अतिरिक्त ऐसा करने से हम बुद्धि-हीना समझी जाएँगी। अतएव हम में से कोई चुनी हुई स्त्रियाँ ही बात करें। शांतिपूर्वक बात करने से ही कोई तत्त्व निकल सकता है।

इस प्रकार निश्चय करके नारीमंडली कैकेयी के निकट पहुँची। इस मंडली में जो विशेष बुद्धिमती और कैकेयी की सखी भी थीं, वही बातचीत करने के लिए नियत की गई थीं। वह कैकेयी से बातें करने लगीं।

कोई आदमी समझाने वाले की बात माने या न माने, मगर समझाने वाले को अपनी गाँठ की अक्ल नहीं गँवानी चाहिए। मतलब यह है कि [illegible] कदाचित् न समझे तो [illegible] धैर्य और अपनी शान्ति नहीं खोना [illegible] मिट जाएगा तो वह अपना [illegible] बुद्धि [illegible]

समझाने [illegible] थीं [illegible] पहले पहल कैकेयी से [illegible]

कहा—महारानी जी का शील और स्नेह ऐसा है कि मुझे आजतक कभी असंतुष्ट होने का अवसर नहीं मिला। हम आज भी इसी आशा से आई हैं। महारानी जी हमें असंतुष्ट नहीं करेंगी। विश्वास है, महारानी हमारी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेंगी।

दूसरी ने कहा—हाँ, आपके ऊपर महारानी जी का बड़ा स्नेह है। तुम महारानी के स्वभाव को जानती ही हो मगर और सब भी आपकी सुशीलता की प्रशंसा करते हैं। महारानी कौशल्या और सुमित्रा भी आपके शील की बड़ाई करती हैं। स्वयं महाराजा भी इनके शील की प्रशंसा करके कहते हैं कि इन्हीं ने मेरे जीवन की रक्षा की है।

इस प्रकार स्त्रियां आपस में बातचीत करके कैकेयी को बहकाने का प्रयत्न करने लगीं। मगर कैकेयी को उनकी बातें ज़हर-सी कड़वी लगती थीं। उन्हें अमृत-से मीठे वचन विष की तरह कटुक क्यों लगते थे? संसार की यह विपरीत दशा देखकर ही ज्ञानी कहते हैं—

न जाने संसारः किममृतमयं कि विषमयम्।

कैकेयी मन ही मन सोचने लगी। [illegible] लगी—इस [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चाहे न माने, हमें तो पूरा प्रयत्न करके अपना कर्त्तव्य पालना ही है। यह सोचकर एक बोली—'महारानी जी अकसर कहा करती थीं कि राम मुझे भरत से भी ज्यादा प्रिय है। जब उनके सामने कोई भरत की प्रशंसा करता तो वे कहती थीं कि मेरे सामने भरत का नाम मत लो, मुझे राम जितने प्यारे हैं, उतने भरत भी नहीं हैं। एक के इस कथन का सब ने समर्थन किया। फिर दूसरी बोली—लेकिन आज यह बात क्यों नहीं दिखाई देती? अगर ऐसे धर्मात्मा राजा की रानी भी सत्य को छोड़ देगी तो सत्य का पालन कौन करेगा? संसार में यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है कि कैकेयी भरत की अपेक्षा राम को ज्यादा प्यार करती है। लोग सौतेले बालक के विषय में आपका उदाहरण दिया करते हैं कि सौतेले बेटे से प्रेम ऐसा होना चाहिए जैसे महारानी कैकेयी का राम पर है! हमने आपके मुख से जब-जब राम की प्रशंसा सुनी, तब यही समझा कि वे राम के प्रति सहज स्नेह रखती हैं। जो कुछ इन्होंने कहा है, बनावटी नहीं है।

सहज स्नेह वह है जो कभी टूट नहीं सकता। माता का पुत्र के प्रति सहज स्नेह [illegible] करके माता को [illegible] नहीं [illegible] रहती है

[illegible] बोली [illegible]
[illegible] हैं कि [illegible] [illegible]

तुम्हारी कल्पना ठीक कैसे है? अगर महारानी जी का राम के प्रति सहज स्नेह है तो किस अपराध से राम आज वन जा रहे हैं! राम अपना राज्य भरत को देकर वन जाने को भी तैयार हैं मगर इनका सहज स्नेह कैसा है जो राम को वन जाने देने को तैयार हैं!

तीसरी ने कहा--महारानी जी का राम के प्रति स्नेह कम नहीं हो सकता। दोनों में आपस में कोई झगड़ा हो गया हो तो कह नहीं सकती।

चौथी बोली--नहीं, संसार उलट जाय पर इस परिवार में रानियों में कभी झगड़ा नहीं हो सकता। यहाँ सौतियाडाह की कभी गंध तक नहीं आई। सब रानियाँ एक-प्राण हैं। आपस में लेश मात्र भी विरोध नहीं है।

पाँचवीं ने कहा--अगर सब का सब पर प्रेम है तो राम का क्या दोष है, जिससे उन्हें वन भेजा जा रहा है? अगर महारानी कौशल्या से कुछ बिगड़ा है तो मैं अभी उनके पास जाती हूँ और पूछती हूँ। [illegible]

कैकेयी का रुख देखकर आई हुई स्त्रियों को भान हो गया कि अब आगे बात करना वृथा है। बात बढ़ाने से कुछ लाभ न होगा। कैकेयी को कुमति ने घेर लिया है। अभी नहीं, कुछ दिन बाद उसे सुमति सूझेगी।

सब स्त्रियाँ निराशा के साथ राजमहल से बाहर आ गईं। बाहर बहुत-से लोग उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। उन्हें उदास देखकर सभी ने समझ लिया कि काम सुधरा नहीं है। आकर उन्होंने कहा—अयोध्या के अभाग्य का अन्त अभी आता नज़र नहीं आता। गीले चूल्हे में फूंक देने से मुँह में राख ही आती है। कैकेयी को समझाने में भी यही हुआ!

राम का संतोष

राम को मालूम हुआ कि नगर की प्रतिष्ठित स्त्रियाँ माता को समझाने आई थीं, पर वह नहीं मानीं। यह जानकर राम ने कहा—मेरा भाग्य अच्छा है। इसीसे माता किसी के बहकावे में नहीं आई और अपनी बात पर दृढ़ रही है। वन जाने में ही मुझे आनन्द है और इसी में कल्याण है। अगर माता फिसल जाती तो राज्य की डोरी मेरे गले में पड़ जाती।

कल्पना कीजिए एक हाथी खंभे से बंधा हुआ है। वह जंगल में जाना चाहता है। इसी समय अचानक खंभा टूट जाता है तो हाथी को कितनी खुशी होगी? कहा जा सकता है कि हाथी राजा के पास रहता तो गन्ना आदि उत्तम वस्तुएं उसे खाने को मिलतीं। जंगल में क्या धरा है? मगर जंगल

सकता। तब इसकी उदासी का क्या कारण होगा ?

राम को स्नेहभरी आँखों से देखकर कौशल्या ने उन्हें उसी तरह गोद में बैठा लिया, जैसे माँ किसी छोटे बालक को खिलाती है। फिर उसने राम का सिर चूम लिया। कौशल्या के आनन्द का पार न रहा, मानो अकिंचन के हाथ में अचानक खजाना आ गया। फिर कौशल्या ने कहा—अभिषेक के मुहूर्त में अब कितनी देरी है ? राम उत्तर में कुछ भी न बोले। तब कौशल्या ने कहा—तुम्हारा न बोलना ठीक है। भले आदमी सम्पत्ति मिलने के समय गंभीर ही रहते हैं। अच्छी बात है जल्दी स्नान कर लो और जलपान करके तैयार हो जाओ अरे लक्ष्मण ! तू आज उदास क्यों दिखाई देता है ? हर्ष के अवसर पर तेरा यह क्या ढंग है ?

राम कहने लगे—माता, तेरा प्रेम-समुद्र अगाध है मगर तू उलटा समझ रही है। मैं एक प्रार्थना करने आया हूँ। तुम्हारे लिए जैसा मैं हूँ, वैसा ही भरत है और जैसे भरत है वैसा ही मैं हूँ। यह बात तुम्हारे मुख से मैं कई बार सुन चुका हूँ।

कौशल्या—वत्स, इसमें नवीन बात क्या है ? मैंने चारों बेटों में कब भेदभाव किया है ?

राम—माँ, मैं जो कुछ आगे कहना चाहता हूँ, वह सुनकर तुम्हें रंज न हो इसी लिए मैंने यह बात कही है। अब मेरी बात सुनकर मुझे रंज होगा या समझा जायगा

मैं जिस कारण वन जाता हूँ, उसकी बदौलत आप भी धन्य मानी जाएँगी। अगर मैं अपराध करके वन जाता तो आप धन्य नहीं समझी जा सकतीं।

कौशल्या—तो कहो न, वन जाने का क्या कारण है?

राम—आपने पिता की सेवा अवश्य की है मगर आपकी अपेक्षा कैकेयी माता ने अधिक सेवा की है। जब मेरा जन्म भी न हुआ होगा, तब एक बार पिताजी पर शत्रुओं ने युद्ध में हमला कर दिया था। उस समय माता कैकेयी पिताजी की रक्षा न करतीं तो उनका जीवन शायद ही रहता। पिताजी का सारथी मारा गया था। उनके घोड़े भाग रहे थे। रथ की धुरी भी टूट गई थी। उस समय माता कैकेयी ने घोड़ों की रास सँभाली और रथ की धुरी कसी। उन्होंने कुशलता के साथ रथ चलाया और पिताजी शत्रुओं को परास्त करने में समर्थ हो सके।

कौशल्या—हाँ, यह घटना ऐसी ही हुई थी। मुझे मालूम है।

राम—तो मैं माताजी के इस महान् कार्य का पुरस्कार देने वन जा रहा हूँ।

कौशल्या—यह कैसे? उस महान् कार्य के लिए महाराज उसी समय वरदान दे चुके हैं।

राम—वरदान देने का वचन दे चुके थे, मगर उस समय पूरा किया नहीं था। अब वह वर माता ने माँग लिया है।

के शब्द में कोई करामात होती है? जो रामचन्द्र पुरुषोत्तम कहलाते हैं, उन्हें अपनी भोली माता के आशीर्वाद की क्या आवश्यकता थी? फिर भी वे माता के आशीर्वाद की इच्छा करते हैं। माता तो आपकी भी होगी। आप राम की तरह माता का आदर करते हैं? आजकल कोई-कोई सपूत तो ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं। कभी-कभी औरत की बातों में आकर माता का अपमान कर बैठते हैं। राम को माता पर बड़ी आस्था थी। वह सोचते थे—माँ अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ, जंगल में आनन्द से रहो, तो जंगल में भी मैं आनन्द से रहूँगा। राम का यह आदर्श भारत को क्या शिक्षा देता है? ऐसा अद्भुत और आदर्श चरित भारत के छोड़ अन्यत्र कहाँ मिल सकता है? नेपोलियन के लिए भी कहा जाता है कि वह माता का बड़ा भक्त था। वह कहा करता था—'तराजू के एक पलड़े में सारे संसार का प्रेम रक्खूं और दूसरे पलड़े में मातृप्रेम रक्खूं तो मेरा मातृप्रेम ही भारी ठहरेगा। उसका मातृप्रेम तो कदाचित् राज्यसुख के लिए भी हो सकता है मगर राम तो उस सुख का त्याग कर रहे हैं।'

राम कहते हैं- माता! आप अपने भोले स्वभाव और पुत्रस्नेह में पड़कर इस आनन्द में विघ्न डालने का विचार भी मत कीजिए। [illegible]

कैकेयी का अपराध है । मगर कैकेयी तो उन्हें वन नहीं भेज रही है । फिर यह अपराध उसके सिर पर कैसे थोपा जा सकता है ? इसलिए कहा है—

न जाने संसारे किममृतमयं किं विषमयम् ?

संसार की विचित्रता बतलाने के लिए ही यह कथा है। राम की बात से कौशल्या को दुःख होने में अपराध का है और किसी का नहीं। कौशल्या मातृसुलभ सुतवत्सलता के कारण राम की बात का यथार्थ स्वरूप नहीं समझ सकीं इसीसे उन्हें दुःख हुआ। लेकिन जब उन्होंने ज्ञान से विचार किया और राम की बात का सच्चा स्वरूप समझ लिया तो बातें बदल गईं।

कौशल्या की व्यथा !

पहले कौशल्या ने वन के भयानक स्वरूप का विचार किया और राम की सुकुमारता का भी विचार किया। [illegible] गर्भ की थी। [illegible] —क्या यह [illegible] सुमन सेज पर [illegible] पगली और कटी [illegible] मोटे [illegible] इसका निर्वाह होगा [illegible] इससे मां

है, उसे इस तरह की कातरता शोभा नहीं देती। आप मेरे लिए दुःख मना रही हैं और मैं प्रसन्नतापूर्वक, स्वेच्छा से वन जा रहा हूँ। फिर आपको शोक क्यों होता है? सिंहनी एक ही पुत्र जनती है मगर ऐसा जनती है कि उसे किसी भी समय उसके लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। सिंहनी गुफा में रहती है और उसका बच्चा जंगल में फिरता रहता है। क्या वह उसके लिए चिन्ता करती है? वह जानती है कि मैंने सिंह जना है। वह अपनी रक्षा आप ही कर लेगा। माता! जब सिंहनी अपने बच्चे की चिन्ता नहीं करती तो आप मेरी चिन्ता क्यों करती हैं? आपकी चिन्ता से तो यह आशय निकलता है कि राम कायर है और आप कायर की जननी हैं! आप मेरे वन जाने से घबराती हैं पर वन में जाने से ही मेरी महिमा बढ़ सकती है। अनेक राजा लोग राज्य छोड़ कर वन को गये हैं। फिर मैं सदा के लिए नहीं जा रहा हूँ कभी न कभी लौट कर आपके दर्शन करूँगा ही। आप मुझे जगत का कल्याण करने वाला समझती हो मगर आपकी कातरता से उलटी ही बात सिद्ध होती है।

मैंने पिताजी का कोई अपराध नहीं किया है। उनका मुझ पर अपरिमित ऋण है। उनके वचन की रक्षा करने के हेतु भरत को राज देकर मैं वन जा रहा हूँ। पिताजी पर जो कर्ज है, वह मुझ पर भी है। मैं पिताजी का ऋण न चुकाऊं तो पुत्र कैसा? आपके पति और पुत्र दोनों ऋण से

हलके हो रहे हैं, फिर आप इतनी व्यथित क्यों होती हैं ?

राम के यह वचन कौशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होंने सोचा—राम ठीक तो कहता है। जब पुत्र-धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हो रहा हो तब माता के शोक का क्या कारण है ? ऐसा करना माता के लिए दूषण है। स्त्रीधर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है, वह स्त्री ने भी दिया है। फिर मुझे शोक क्यों करना चाहिए ?

आज्ञाप्रदान।

इस प्रकार विचार कर कौशल्या ने कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा कहना समझ गई। मैं आज्ञा देती हूँ, तुम धर्म पालने के लिए वन को जा सकते हो। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि वन तुम्हारे लिए मङ्गलमय हो। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। तुम धर्म की सिद्धि और पुनरागमन के लिए जाओ।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पुत्र ! अभी तक तू [illegible] राम बन। अब तेरा नाम सार्थक है [illegible] अपना कल्याण और जगत की उन्नति में अपना उन्नति मानता है।
[illegible]

म होकर अपना लक्ष्य पूर्ण कर।

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः।

जिसे संसार आदर्श मानता है, जो धर्मात्माओं का आधार है, जिसमें योगीजन विश्राम करते हैं, वह 'राम' कहलाता है।

संसार अशांति और नाना प्रकार के दुःखों का स्थल है। यहाँ कौन ऐसा पुरुष है जिसने अशांति की छाया न देखी हो? जो दुःखों का निशाना न बना हो! महापुरुष वह है जो अपनी आत्मा को संसार से अलिप्त रखता है और दूसरों के दुःख दूर करता है। राम ऐसा करते थे, सब को प्रिय हुए हैं।

राम घर पर ही रहते तो भरत को कोई हानि न पहुँचती। उन्हें घर रहकर अपना कल्याण करने का उपाय भी मालूम था, जैसे कि भगवान महावीर [illegible] [illegible]

मिलना मानते हैं। कहावत है—अमुक के पास इतना धन है, इसलिए रामजी राजी हैं। किन्तु धन की वृद्धि धर्म की वृद्धि नहीं है। धर्म की वृद्धि कुछ और ही वस्तु है। सच्ची धर्म-वृद्धि वह है जिसके साथ मर्म-ऋद्धि भी हो। मर्म की जानकारी होना ही धर्म की वृद्धि है। कौशल्या पहले से रो रही थीं, पर अब वह भी आपको दिखाई दे रही हैं। इसका कारण यही है कि अब उन्होंने मर्म को जान लिया है। मर्म को जान लेने की ऋद्धि कम नहीं है। कौशल्या के यहाँ राजकीय वैभव की तनिक भी कमी नहीं थी, फिर भी राम के वन-गमन की बात सुनकर वह रोने लगी थी। लेकिन मर्म तक पहुँच जाने पर राम का वन-गमन भी उसे कष्ट नहीं पहुँचा सका। अब देखना चाहिए, कौन-सी ऋद्धि बड़ी है। धन-सम्पदा की ऋद्धि बड़ी है या मर्म जानने की ऋद्धि बड़ी है।

एक आदमी संसार सम्बन्धी समस्त भोग-विलासों की सामग्री प्राप्त होने पर भी रोता है और दूसरा राम से कुछ भी न होने पर भी राम के दर्शन कर [illegible] हँसता है। इस विभिन्नता का क्या कारण है? इसका एक मात्र कारण यही है कि एक ने मर्म को नहीं जाना और दूसरा मर्म को जानता [illegible] विपत्ति में [illegible] उसकी अन्तरात्मा तक पहुँच नहीं सकता। इस [illegible] मर्म को [illegible]

प्रकार धन सम्पत्ति की ऋद्धि की अपेक्षा मर्म जानने की ऋद्धि बहुत बड़ी है।

कौशल्या राम से कहती है—हे पुत्र, तुझे मर्म-ऋद्धि प्राप्त हो-तू मर्म को जान जाए और दूसरों को भी मर्म समझा सके। मेरा आशीर्वाद है कि संसार के समस्त प्राणी तेरे हों और तू मेरा हो।

अहा ! कितना सुन्दर आशीर्वाद है ! माँ अपने बेटे को सिखलाती है कि इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा अपना हो। तू सब को अपना आत्मीय समझ ! और तब तू मेरा होगा। लेकिन आज क्या होता है ?

मात कहे मेरा पूत सपूता।
बहिन कहे मेरा भैया॥
घर की जोरू यों कहे।
सब से बड़ा रुपैया॥

बेटा चाहे अधर्म करे, अनीति करे झूठ कपट का सेवन करे, अगर वह रुपये ले आता है तो अच्छा। बेटा है नहीं तो नहीं। ऐसा मानने वाले लोग वास्तव में माँ बाप नहीं किन्तु अपनी सन्तान के शत्रु हैं। संसार में जहाँ पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मां बाप मौजूद हैं वहां ऐसे मां बाप भी मिल सकते हैं जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर ही प्रसन्न होते हैं। पुत्र जब कहता है— आज मेरे ऊपर ऐसा संकट आ गया था। मैं अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले

सकता था, फिर भी मैंने धर्म नहीं छोड़ा । मैंने अपने शत्रु की आज इस प्रकार सहायता की । ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होने वाली माँ आज कितनी हैं ? ऐसी माता ही जगत् को आनंद देने वाली है ।

सीता का अन्तर्द्वन्द्व

राम और कौशल्या की बात सीता भी सुन रही थी। वह नीची दृष्टि किये, सलज्ज भाव से वहीं खड़ी थी। माता और पुत्र का वार्तालाप सुनकर उसके हृदय में कौन जाने कैसा तूफान आया होगा ! सीता की सासू उसके पति को वन जाने के लिए आशीर्वाद दे रही है, यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिए था या दुखी ? आज ऐसी बात हो तो वह कहेगी- यह कैसी अभागिनी सासू है जो अपने बेटे को ही वन में भेज देने के लिये तैयार हो गई है ! मैं समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उलटा आशीर्वाद दे रही है ! मगर सीता ने ऐसा नहीं सोचा। सीता में कुछ विशेषताएँ थीं और उन्हीं विशेषताओं के कारण राम से भी पहले उनका नाम लिया जाता है पर आज सीता के आदर्श को अपने हृदय में उतारने वाली स्त्रियाँ कितनी मिलेंगी फिर भी भारत वर्ष का सौभाग्य है कि यहाँ के लोग सीता के चरित्र को बुरा नहीं समझते । बुरे से बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है

सीता मन ही मन कहती है—आज प्राणनाथ वन को

जाते हैं। क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणों में आश्रय पा सकूँ?

पति को 'प्राणनाथ' कहने वाली स्त्रियाँ तो बहुत मिल सकती हैं मगर इसका मर्म सीता जैसी विरली स्त्री ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिए सुख की बात थी या दुःख की? यों तो पत्नी को छोड़कर पति का जाना पत्नी के लिए दुःख की बात ही है, पर सीता को दुःख का अनुभव नहीं हो रहा है। उसकी एक मात्र चिन्ता यह है कि क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी अपने पतिदेव की सेवा में रह सकूँ? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सम्पत्ति थी। यह सम्पत्ति सभी को सुलभ है। जो चाहे, उसे अपना सकता है। अपनी सेवा धर्म को दे सकता है। जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा।

सीता सोचती है—मेरे स्वामी देवर को राज्य देकर वन जा रहे हैं। वे माता की इच्छा और पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए वन जाते हैं, लेकिन हे सीता! मेरा भी कुछ सुकृत है या नहीं? क्या मेरा इतना सुकृत है कि मेरा और प्राणनाथ का साथ हो सके? तू ने प्राणनाथ के गले में वरमाला डाली है, पति के साथ विवाह किया है—उनके चरणों में अपने को अर्पित कर दिया है। इतने दिन उनके साथ संसार का सुख भोगा है तो मेरा इतना सुकृत नहीं है कि वन में ... सकूं।

सीता सोचती है—'मैं राम के साथ भोग-विलास करने के लिए नहीं ब्याही गई हूँ। मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ है। ऐसी दशा में क्या अकेले राम ही वन जाकर धर्म करेंगे? क्या मैं उस धर्म में सहयोग देने से वंचित रहूँगी? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेंगे। मुझ में इतना साहस है कि अपने प्राणों को शरीर से अलग कर सकती हूँ। अगर राजमहल के कारागार में मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा शरीर—निर्जीव शरीर ही कैद होगा। प्राण तो प्राणनाथ के पास उड़ कर पहुँचे विना नहीं रहेंगे।'

प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है। मुझे अभी प्राप्त करनी होगी। सासूजी की अनुमति लिए विना मेरा जाना उचित नहीं है। सासूजी से मैं अनुमति लूंगी। जब उन्होंने पुत्र को अनुमति दे दी है तो पुत्रवधू को भी देंगी ही।

मनुष्य को अपना चरित्र सुधारने के लिए किसी उत्कृष्ट चरित्र का अवलम्बन लेना पड़ता है। जैसे दुर्बलता की दशा में लकड़ी का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है और आंख कमजोर होने पर चश्मा की सहायता ली जाती है, इसी तरह अपना चरित्र सुधारने के लिए किसी महापुरुष के चरित्र का सहारा लिया जाता है। लकड़ी लेना या चश्मा लगाना कोई गर्व की बात नहीं है बल्कि कमजोरी का

लक्षण है। उसी प्रकार चरित्र का आश्रय लेना भी एक प्रकार की कमजोरी ही है। फिर भी काम न चल सकने पर लकड़ी और चश्मा रखना बुराई में नहीं गिना आता। इसी तरह आत्मा किसी की सहायता के बिना ही आप ही अपना कल्याण कर सके तो अच्छा ही है। अगर इतना सामर्थ्य न हो तो किसी आदर्श चरित्र का आश्रय लेना बुरा नहीं है। जो ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है और जिसे ज्यादा अवकाश भी नहीं मिलता, वह अगर सीता-राम के चरित को अपने हृदय में उतार ले तो उसे वही लाभ मिल सकता है जो महापुरुषों को मिलता है। शास्त्र के अक्षर चश्मा लगाने वाला भी देखता है और जिसे चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं वह भी देखता है। कोई कैसे भी देखे, देखता तो शास्त्र के अक्षर है और उन्हें देख कर लाभ उठाता है। वह लाभ दोनों उठा सकते हैं। इसी प्रकार चरित्र का अवलम्बन लेकर साधारण मनुष्य भी वही लाभ उठा सकता है जो महापुरुषों को प्राप्त होता है

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिए गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊँचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है इससे प्रगट है कि उनमें परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं मैंने विवाह के समय इन्हें जिस रूप में देखा था आज दूसरे ही रूप में देख रही हूँ

हानि ही होगी। आप खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, ओढ़ते हैं। मगर आपसे अच्छा खाने-पीने और पहनने ओढ़ने वाले भी हैं, या नहीं? फिर आप क्या यह सब करना छोड़ देते हैं? अक्षर मोती जैसे सुन्दर लिखने चाहिए, मगर ऐसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना ही छोड़ देता है? इसी तरह सीता-सी सती बनना अगर कठिन है तो क्या सतीत्व ही छोड़ देना उचित है? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोड़ना नहीं चाहिए। निरंतर अभ्यास करने और सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव है।

सती स्त्रियों में ऊँची होती हैं। लेकिन नीच स्त्री कैसी होती है, यह भी कवि ने बतलाया है। कवि कहता है—खाने पीने और पहनने-ओढ़ने के समय प्राणनाथ-प्राणनाथ करने वाली और समय पड़ने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती है। ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना और भीतर कुछ और रखना नीचता है। इस प्रकार की नीचता का कभी न कभी भण्डाफोड़ हो ही जाता है। कदाचित भण्डाफोड़ न हो तो भी उसके कर्म अपना फल देने से कभी नहीं चूकते। नीच स्त्रियाँ भीतर बाहर कितना भिन्नता रखती हैं, यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है -

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रों के सामने बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहा करता था

संसार में सती स्त्रियाँ तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती दूसरी नहीं है। कभी-कभी वह सीता, अंजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ कहता। उसके मित्रों में कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नहीं हैं। इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। त्रिया-चरित्र को समझ लेना साधारण बात नहीं है।

ठाकुर ने कहना ओलाहना नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नहीं?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली बिना पानी जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।

समालोचक—आपकी बातों से प्रतीत होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे तब असलियत मालूम होगी।

ठाकुर—[illegible]

समालोचक—[illegible]

यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिपकर घर में बैठ रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है! आप अपने पीछे ही स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं। मौजूदगी में नहीं।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता, मगर लाचारी है। कुछ दिनों के लिए तुम्हें छोड़कर बाहर जाना पड़ेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नहीं।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्य के साथ कहा—क्या हुक्म हुआ है? कौन-सा हुक्म मानना पड़ेगा?

ठाकुर—मुझे पाँच सात दिन के लिए बाहर जाना है।

ठकुरानी—पाँच-सात दिन! बाप रे! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेंगे! मुझे तो भोजन भी नहीं रुचेगा।

ठाकुर—कुछ भी हो जाना तो पड़ेगा ही।

ठकुरानी—इतने दिनों में तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊँगी। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं होगा। लोग कहेंगे स्त्री के कहने से माना है। राजा कहेगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता। ऐसा करना भी बहुत बुरा होगा।

ठकुरानी—हाँ, ऐसा करना भी ठीक नहीं होगा, मगर,

दासी ने सोचा—चलो ठीक है। मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाये और खूब घी मिलाया। ठकुरानी ने बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी, बाफले तूने बनाये तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोड़ी नरम-नरम खिचड़ी बना डाल।

दासी ने यही किया। खिचड़ी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात बीत गई। अभी एक पहर और बाकी है। थोड़ी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते-चबाते रात बिताएँ! दासी लाई सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख-सुन रहा था। वह सोचने लगा—पहली ही रात में यह हाल है तो आगे क्या-क्या नहीं हो सकता! अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह अपने घोड़े के पास लौट आया। घोड़े पर सवार होकर घर आ पहुँचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—'ठोकम' पधार गया है। ठकुरानी ने कहा—ठोकम पधार गया! अच्छा हुआ।

ठाकुर [illegible] हुआ [illegible] [illegible] अच्छी है [illegible] आता [illegible]

ठाकुर— [illegible]

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हूँ! अरे बाप रे! मैं नागिन हो गई? भगवान् जानता है, सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं!

ठाकुर—मैं नहीं बनाता, तुम स्वयं बन रही हो! मैं अपने मित्रों के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ!

ठकुरानी—तो बताते क्यों नहीं, मैंने ऐसा क्या किया है? मैं आपके बिना जी नहीं सकती और आप लांछन लगा रहे हैं!

ठाकुर—बस, रहने दो। मैं अब वह नहीं जो तुम्हारी मीठी बातों में आजाऊँ। तुम मुझसे कहा करती थीं-तुम्हारे वियोग में मुझे खाना नहीं भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया!

ठकुरानी की पोल खुल गई। सारांश यह है कि संसार में इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रियाँ भी हैं और पतिव्रताएँ भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रियाँ भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती है। संसार में अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि हमें क्या ग्रहण करना चाहिए। जिसको अपनाने से हमारा जीवन उच्च और पवित्र बन सकता है।

आज चाहे कोई स्त्री सीता नहीं बन सकती तो भी सत्य

तो वही रखना चाहिए। अगर कोई अच्छे अक्षर नहीं लिख सकता तो साधारण ही लिखे। लिखना छोड़ बैठने से काम कैसे चलेगा ? यही बात पुरुषों के लिए कही जा सकती है। पुरुषों के सामने महान्-आत्मा राम का आदर्श है। उन्हें राम की तरह उदार, गंभीर, मातृ-पितृ सेवक, बन्धु-प्रेमी और धार्मिक बनना है।

सीता पतिप्रेम के शीतल जल में स्नान कर रही है। सीता में कैसा पतिप्रेम था, यह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि क्या जैन और क्या अजैन, सब ने अपनी शक्ति भर सीता की गुण गाथा गाई है। मेंहदी का रंग चमड़ी पर चढ़ जाता है और कुछ दिनों तक वह चमड़ी उतारे बिना नहीं उतर सकता। मगर सीता का पतिप्रेम इससे भी गहरा था। सीता का प्रेम इतना अन्तरंग था कि वह चमड़ी उतारने पर भी नहीं उतर सकता था और वह आजीवन के लिए था-थोड़े दिनों के लिए नहीं।

कवियों ने कहा है कि सीता, राम के रंग में रंग गई थी। पर राम में अब कौन-सा नवीन रंग आया है जिसमें सीता रंग गई है ?

जिस समय सीता के स्वयंवर मंडप में सब राजाओं का पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गये थे और जब सब राजाओं के सामने राम ने अपना पराक्रम दिखलाया था, उस समय राम के रंग में सीता का रंगना ठीक था

पर उस समय के रंग में स्वार्थ था। इसलिए उस समय के लिए कवि ने यह नहीं कहा कि सीता राम के रंग में रंग गई। मगर इस समय राम ने सब वस्त्र उतार दिये हैं, वल्कल वस्त्र धारण किये हैं, फिर सीता राम के रंग में क्यों रंगी है? अपने पति के असाधारण त्याग को देखकर और संसार के कल्याण के लिए उन्हें वनवास करने को उद्यत देखकर सीता के प्रेम में वृद्धि ही हुई। वह राम के लोकोत्तर गुणों पर मुग्ध हो गई। इसी से कवि ने कहा है कि सीता राम के रंग में सराबोर हो गई।

इस समय सीता की एक मात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे मुझे मिल सकेगी या नहीं?

वास्तव में वही स्त्री पतिप्रेम में अनुरक्त कहलाती है जो पति के धर्मकार्य में सहायक होती है। गहने-कपड़े पाने के लिए और दूसरे भोग-विलास करने के लिए तो सभी स्त्रियाँ प्रीति प्रदर्शित करती हैं मगर संकट के समय, पति के कंधे से कंधा भिड़ाकर चलने वाली स्त्री सराहनीय है। गिरते हुए पति को उठाने वाली और उठे हुए पति को आगे बढ़ाने वाली स्त्री पतिपरायणा कहलाती है।

कौशल्या और सीता ।

रामचन्द्र ने कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे। तब पास ही खड़ी सीता भी कौशल्या के पैरों में गिर पड़ी। सीता को पैरों में गिरी देख कौशल्या समझ गई कि सीता भी उस पींजरे से बाहर जाना चाहती है जिसे राम ने तोड़ा है।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा—बहू, तुम चंचल क्यों हो ?

सीता—माता ! ऐसे समय चंचलता होना स्वाभाविक ही है। आपके चरणों की सेवा करने की मेरी बड़ी साध थी। वह मन की मन में ही रह गई। कौन जाने, अब कब आपके दर्शन होंगे ?

कौशल्या—क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो ?

सीता—[illegible] माता [illegible] यही निश्चय है। जिसके [illegible] हूँ, जब वही वन जा रहे हैं तो मैं यहाँ किस प्रकार रहूँगी ? जब पति वन [illegible] तो पत्नी राजभवन में [illegible] नहीं यथाविधि [illegible] [illegible] सकती हूँ ?

सीता की बात से कौशल्या की आँखें भर गई। राम तो ठीक, पर यह राजकुमारी सीता वन में कैसे रहेगी ? फिर सीता सरीखी गुणवती वधू के वियोग से सासू को शोक होना स्वाभाविक ही था। कौशल्या ने सीता का हाथ पकड़ कर, अपनी ओर खींच कर उसे बालक की तरह अपनी गोद में ले लिया। अपनी आँखों से वह सीता पर इस तरह अश्रुजल गिराने लगी, जैसे उसका अभिषेक कर रही हो। थोड़ी देर बाद कौशल्या ने कहा—पुत्री, क्या तू भी मुझे छोड़ जायगी ? तू भी मुझे अपना वियोग देगी ? राम को अपना धर्म पालना है, उन्हें अपने पिता के वचन की रक्षा करनी है, इसलिए वे वन को जाते हैं। पर तुम क्यों जाती हो ? तुम पर क्या ऋण है ?

सीता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती ? वह यही उत्तर दे सकती थी कि मैं राम के साथ में रही हूँ। पति जिस ऋण को चुकाने के लिए वन जाते हैं वह क्या अकेले उन्हीं पर है ! नहीं, वह मुझ पर भी है [illegible] अर्धांगिनी हूँ [illegible] पति पर [illegible]

[illegible]

जाने को तैयार थी मगर सासूजी नहीं जाने देतीं। सासू की आज्ञा मानना भी तो बहू का धर्म है! पर सीता ऐसी स्त्रियों में नहीं थी।

कौशल्या ने सीता से कहा—बहू, विदेश प्रिय नहीं है। प्रवास अत्यन्त कष्टकर होता है, फिर वन का प्रवास तो और भी अधिक कष्टमय है, तू किसी दिन पैदल नहीं चली। अब काँटों से परिपूर्ण पथ पर तू कैसे चल सकेगी? तेरे सुकुमार पैर कंकरों और काँटों का आघात कैसे सहेंगे?

आप सीता को कोई गुड़िया न समझें, जो चार कदम भी पैदल नहीं चल सकती। उसके चरित्र पर विचार करने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह सुख के समय पति के पीछे रही थी और दुःख में पति के आगे रही थी। अतएव उन्हें कायर नहीं समझना चाहिए।

सब ही चाले लश्करी,
सब ही लश्कर जाय।
रैल धमाका जो सहै,
सो जागीरी खाय॥
गलियारा फिरता फिरै
बांधे लाल तलवार।
शूर तब ही जानिये
रण मांडे झकार

स्त्रियाँ कहती हैं—हमें कायर मत समझना जब हम दुख

सिपाही का काम है। चलते-चलते जहाँ शाम हो गई वहीं बसेरा करना पड़ता है।

'यही नहीं, जंगल में भयानक हिंसक जानवर भी होते हैं। सिंह, चीता, बाघ, सियार वगैरह के भयंकर शब्दों को तू कैसे सुन सकेगी? तू ने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नहीं है।'

सीता सासूजी की यह बातें सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुई। उसने सोचा कि यह तो मेरे राम-रस की परीक्षा हो रही है। अगर इसमें मैं उत्तीर्ण हुई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

सीता के शरीर पर हाथ फेर कर कौशल्या कहने लगीं—'देखती नहीं, तेरा शरीर फूल-सा कोमल है। तू बचपन से कोमल शय्या पर सोई है। लेकिन वन में शय्या कहाँ? धरती पर सोने में तुझे कितना कष्ट होगा? उस समय राम के लिए तू भार हो जायगी। परदेश में स्त्रियाँ, पुरुषों के लिए भार रूप हो जाती हैं। फिर यह तो वन का प्रवास है। स्त्रियों का घर में रहना शोभा देता है। जंगल में भटकना उनका धर्म नहीं है।'

माता की इस बात का राम ने भी समर्थन किया। वह मुस्किराते हुए बोले—'माता आप ठीक कहती हैं। वास्तव में जानकी वन जाने योग्य नहीं है।'

माता के सामने जानकी के विषय में कुछ कहते हुए राम लज्जित तो हुए लेकिन इस अवसर पर सर्वथा चुप भी नहीं

तुम मेरी और माता की बात मान जाओ। वनवास कोई साधारण बात नहीं है। वन में बड़े-बड़े कष्ट हैं। हमारा शरीर तो वज्र के समान है। क्षत्रियों के सामने युद्ध करके हम मजबूत हो गए हैं। लेकिन तुमने कभी घर से बाहर पैर भी रक्खा है? अगर नहीं, तो मेरी ममता मत करो। वन में भूख-प्यास, सर्दी गर्मी आदि के दुःख सभी माता सहना चुकी हैं। मैं अपने साथ एक भी पैसा नहीं ले जा रहा हूँ कि उससे कोई प्रबंध कर सकूंगा। राजा का कोई काम न करना फिर भी राज्य की सम्पत्ति का उपयोग करना मैं उचित नहीं समझता। इसलिए मैं राज्य का एक भी पैसा नहीं ले जा रहा हूँ। इस स्थिति में तुम्हारा चलना सुविधा-जनक न होगा।

मैंने वल्कल-वस्त्र पहने हैं। वन जाकर मैं अपने जीवन की रक्षा के लिए सात्विक साधन ही काम में लूंगा। मैं वन-फल खाकर भूमि पर सोऊंगा। वृक्ष की छाया ही मेरा घर होगी या कोई पर्णकुटी बना कर वहीं रहूंगा। तुम यह सब कष्ट सह नहीं सकोगी।

राम और सीता।

राम यहाँ दुविधा में पड़े हैं। एक ओर सीता के प्रति ममता के कारण उसके कष्टों की कल्पना करके, और माता को अकेली न छोड़ जाने के उद्देश्य से वह सीता को साथ

नहीं ले जाना चाहते, दूसरी ओर सीता की पतिपरायणता देख और पतिवियोग उनके लिए असह्य होगा यह सोच कर वे उसे छोड़ जाना भी नहीं चाहते। फिर भी वे यह चाहते हैं कि सीता वन के कष्टों के विषय में धोखे में न रहे। इसी लिए उन्होंने सारे कष्टों को सीता के सामने रख दिया।

यही बात शास्त्रों में पाई जाती है। जब कोई पुत्र दीक्षा लेने की इच्छा से माता पिता के सामने आता और उनसे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा चाहता था तो माता पिता दीक्षा के विरोधी न होने पर भी दीक्षा के कष्टों को विस्तार के साथ पुत्र के सामने प्रकट कर देते थे। इसका उद्देश्य यह होता था कि पुत्र किसी प्रकार भ्रम में न रहे। उसे बाद में पछताना न करना पड़े, कि हाय, मैं क्यों इस मुसीबत में पड़ गया! ऐसा जानता तो मैं साधु बनता ही क्यों? माता-पिता ऐसा न करें तो माता या पिता के माथे उसका तो कलंक है, इसके सिर आवे। इस कारण माता पिता संयम-जीवन की सब कठिनाइयाँ [illegible]

[illegible]

लगते हैं। भोजन मिल जाता है और इच्छानुसार मिल जाता है, मगर संयम लेने पर भूख-प्यास की पीड़ा सहनी होगी और रूक्ष-नीरस आहार से भी जीवनयात्रा का निर्वाह करना पड़ेगा। भोजन कभी मिलेगा, कभी नहीं मिलेगा। मिलेगा भी तो कभी समय पर नहीं मिलेगा। अगर ऐसे कष्ट सहन करने की क्षमता हो तो संयम ग्रहण करो, अन्यथा मत ग्रहण करो। इस प्रकार संयम लेने वाले को माता पहले ही चेतावनी दे देती थी। कौशल्या भी सीता को वन में होने वाले कष्ट स्पष्ट समझा रही है।

सीता-राम ने भी बड़ा उत्सर्ग या बलिदान किया है। कहा जाता है कि बलिदान के बिना देवी की पूजा नहीं होती और हम भी यही कहते हैं कि त्याग-प्रत्याख्यान के बिना आत्मा का कल्याण नहीं होता। मगर देखना यह है कि बलिदान किसका करना है? अधिक से अधिक मूर्छा या ममता का त्याग करने वाले ही अपना आत्मा के कल्याण के साथ जगत् का कल्याण करने में समर्थ हो सके हैं। अतएव अन्तःकरण में घुसी हुई ममता का बलिदान करने योग्य है। ऐसा बलिदान करने वाले [illegible] और धर्म का भला कर सकते हैं।

राम और कौशल्या ने [illegible] रहने लिए समझाया। उनकी बातें सुनकर [illegible] लगी—यह एक विकट प्रसंग है। अगर मैं इस समय [illegible] के कारण चुप

राम के छुड़ाए भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे पर सीता नहीं रुकीं। वास्तव में राम-रंग वह है जो राम के धोने से भी नहीं धुलता।

सीता कहती है—प्राणनाथ ! जान पड़ता है, आज आप मेरी ममता में बह गए हैं। मेरे मोह में पड़कर आपने जो कहा है उसका मतलब यह है कि मैं अपने धर्म-कर्म का और अपनी विदग्धता का परित्याग कर दूँ। यद्यपि आपके वचन शीतल और मधुर हैं लेकिन वियोगी के लिए चन्द्रमा की किरणें भी दाह उत्पन्न करने वाली हो जाती हैं। यह तो जल से ही प्रसन्न रहती है। स्त्री का सर्वस्व पति है। पति ही स्त्री की गति है। सुख-दुख में समान भाव से पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता स्त्री का कर्त्तव्य है। मैं इसी कर्त्तव्य का पालन करना चाहती हूँ। अगर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गई तो घृणा के साथ लोग मुझे स्मरण करेंगे। इसमें मेरा गौरव नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव को लेकर और जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए वन-गमन कर रहे हैं, क्या उस गौरवपूर्ण काम में मुझे शरीक नहीं करेंगे? आप अकेले ही रहेंगे! ऐसा मत कीजिए। मुझे भी उसका थोड़ा-सा भाग दीजिए। अगर मुझे शामिल नहीं करते तो मुझे अर्धांगिना कहने का क्या अर्थ है? हाँ, अगर वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए। अगर गौरव की बात है तो मुझे घर

नहीं हैं, वह सुखप्रद होने पर भी ग्राह्य है या नहीं? और जिसमें सब दुःख हैं मगर राम हैं तो वह ग्राह्य है या नहीं? जिसमें राम नहीं हैं वह चीज़ अगर छूट रही हो तो उसे छोड़ना चाहिए या नहीं? ऐसे प्रसंग पर क्या करना चाहिए, यह बात सीता से सीखने योग्य है। कामदेव श्रावक से देव ने कहा था—अपना धर्म छोड़ दे, नहीं तो तन के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा! फिर भी कामदेव अटल रहा। उसने सोचा—तन जाता है तो जाय, जिसमें राम है-धर्म है-उसे नहीं छोड़ूंगा।

हनुमानजी वानरवंशी क्षत्रिय थे, वानर नहीं थे। वानरवंशी होने के कारण वे वानर के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। कहते हैं, एक बार उन्हें सीता ने एक हार दिया। हनुमानजी उस हार को पत्थर पर पटक कर फोड़ने लगे। यह देखकर लोग कहने लगे—अरे, हनुमानजी यह क्या कर रहे हैं? हनुमानजी से हार फोड़ने का कारण पूछा गया। उन्होंने बतलाया—मैं देखना चाहता हूं कि इसमें राम हैं या नहीं? अगर राम हों तो यह मेरे काम का है। इसमें राम न हुए तो मेरे किस काम का? हनुमानजी का यह उत्तर सुनकर लोग चकित रह गए। सोचने लगे—'हनुमानजी की राम के प्रति कैसी निष्ठा है! कैसी अपूर्व भक्ति है!' सचमुच हनुमानजी रामभक्तों में शिरोमणि हैं।

सीता सोचती है - जहां राम हैं वहां सभी सुख हैं। जहां राम नहीं वहां दुःख ही दुःख है। राम स्वयं सुखमय

बहुत होते हैं। लेकिन लखपति यह नहीं सोचता कि बहुत-से लोग गरीब हैं तो मैं अकेला ही क्यों लखपति रहूँ? अगर कोई राजा है तो वह नहीं सोचता कि दूसरे राजा नहीं हैं तो मैं अकेला ही क्यों राजा रहूँ? ऐसे प्रसंग पर तो लोग सोचते हैं-अपना-अपना भाग्य है! जब निर्धन बनने में दूसरे का अनुकरण नहीं किया जाता तो आचार-विचार की शिथिलता का क्यों अनुकरण करना चाहिए? आचरण-हीनता का अनुकरण करने से पतन होता है। अतएव हमारी दृष्टि उस ओर नहीं वरन् श्रेष्ठ आचरण करने वालों की ओर जानी चाहिए। ऐसा करने से जीवन उन्नत और पवित्र बनेगा। एक कवि ने कहा है—

> निज पूर्वजों के चरित का,
> जिसको नहीं अभिमान है।
> उस जाति का जीना जगत में,
> मित्र! मरण समान है।
> रक्खा सदा जो पूर्वजों के,
> सद्गुणों का ध्यान है।
> इस जाति का निश्चय समझ लो,
> स्पष्ट ही उत्थान है।

जिस जाति या समाज के हृदय में अपने पूर्वजों के प्रति गौरव का भाव नहीं है, उनकी [illegible] आध्यात्मिकता और शील संपन्नता के प्रति आदर नहीं है, जो अपने पूर्वजों के सद्गुणों का

आशीर्वाद दिया—बेटी, जब तक गंगा और यमुना की धारा बहती रहे तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नहीं, सारे संसार की है। तेरा चरित देखकर संसार की स्त्रियाँ सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा अहियात अखण्ड रहेगा। सीते! तेरे लिए राजभवन और गहन वन समान हों—तू वन में भी मंगल से पूरित हो।

सीता सासू का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के हृदय की क्या अवस्था हुई होगी, यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं।

राम और सीता भावी के विचित्र सन्निधान की अवस्था में कौशल्या के पैरों में गिर पड़े। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और बिदाई दी।

तिरस्कार करता है, समझना चाहिए कि उस जाति एवं उस समाज का पतन दूर नहीं है। जिस जाति की अवनति होती होती है, उसके साहित्य का पतन पहले होता है। जिसको अपनी उन्नति की लिप्सा होगी वह अपने साहित्य को नहीं गिरने देगा। वह अपने साहित्य में अपने आदर्श पूर्वजों की गौरव-गाथा को अभिमान के साथ स्थान देगा और इस प्रकार अपनी जाति के समक्ष नवीन प्रेरणा उपस्थित कर देगा। इस प्रकार जो जाति अपने पूर्वजों का ध्यान रक्खेगी वह उन्नत होती चली जायगी। एक विद्वान का कहना है कि चाहे लाखों मनुष्य मर जाएं लेकिन यदि हमारे देश का साहित्य और हमारे पूर्वजों का गौरव बना रहे तो हमारा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

आप राम का चरित्र क्यों सुनते हैं? यह चरित्र इतना प्यारा क्यों लगता है? इसका एक मात्र कारण यही है कि इससे आत्म-संतोष के साथ प्रेरणा मिलती है। अगर ऐसा चरित्र हमारे सन्मुख न बना रहे तो हम पतित हो सकते हैं। [illegible]

[illegible]

आशीर्वाद दिया—बेटी, जब तक गंगा और यमुना की धारा बहती रहे तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नहीं, सारे संसार की है। तेरा चरित देखकर संसार की स्त्रियाँ सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा अहिवात अखण्ड रहेगा। सीते! तेरे लिए राजभवन और गहन वन समान हों—तू वन में भी मंगल से पूरित हो।

सीता सास् का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के हृदय की क्या अवस्था हुई होगी, यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं।

राम और सीता भावों के विचित्र सम्मिश्रण की अवस्था में कौशल्या के पैरों में गिर पड़े। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और बिदाई दी।

राम के साथ लक्ष्मण भी !

——::::()::::——
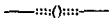
माता से विदा होकर राम, सीता के साथ रवाना होने लगे। उस समय लक्ष्मण पास में ही खड़े थे। राम को आते देख लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। राम ने उन्हें छाती से लगा लिया। सिर पर प्यार का हाथ फेर कर राम कहने लगे—'वत्स ! चिन्तित न होना। आनन्द में रहना। विलम्ब होरहा है। विदा दो, मैं जाऊं।'

लक्ष्मण—'प्रभो ! विदा किसे कहते हैं, यह तो मुझे मालूम ही नहीं।'

राम—इतने दिन मेरे साथ रहकर भी और इतना सब सुनकर भी तुम नहीं जान पाये ? भैया, मैं तेरा हृदय जानता हूं। मैं यह भी जानता हूँ कि तेरा हृदय मेरे वियोग से फट रहा है। पर यह तो नियति का विधान है। यह अदृष्ट की प्रबल प्रेरणा है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। अब दूसरी बात सोचने के लिए एक भी क्षण नहीं है।

प्रिय लक्ष्मण ! मुझे जाने दो। तुम यहां रहकर माता-पिता और प्रजा की सेवा करना। यहां रहकर माता सेवा

करता था, उसका भार अब तुम्हारे कन्धों पर है। मेरे जाने के बाद कोई यह न कहने पावे कि राम के न होने से यह काम बिगड़ गया है! इसीलिए मैं तुम्हें यहाँ रख जाता हूँ। तुम प्रजा-पालन में भरत की सहायता करना। तुम भरत के सहायक रहोगे तो प्रजा शांति का अनुभव करेगी।

लक्ष्मण—भ्राता! आपने नीति की सीख दी है। लेकिन नीति और धर्म की बात तो वही समझ पाता और पालता है जो बलवान् होता है। मैं बालक की तरह आपकी छाया में पला हूँ और आपका अनुचर हूं। मेरे लिए नीति, धर्म या चाहे सो कहिए, आप ही हैं। आपको छोड़कर और कुछ भी मेरे लिए रुचिकर नहीं है। आप मुझ पर जो भार डाल रहे हैं वह मेरी शक्ति से परे है। मैं उस भार से दब जाऊँगा। मेरे लिए राम ही संसार है। राम को छोड़कर मैं और कुछ नहीं जानता।

यह कहते-कहते लक्ष्मण का कंठ भर आया। वे राम के पैरों में गिर पड़े। पैर पकड़ कर कहने लगे—मैं दास और आप स्वामी हैं। मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर करना छोड़ दिया है। जब से आपने मुझे समझाया, मैं मौन हूँ। मैंने दासभाव पकड़ रक्खा है। अब आप मुझे अलग रहने को कहते हैं सो इस पर मेरा कोई वश नहीं है। लेकिन आपका यह कहना पानी से मछली को अलग करने के लिए कहने के समान है। मछली पानी से जुदी की जा सकती है मगर वह जुदाई सह

राम के साथ लक्ष्मण भी !

——:::():::——

माता से विदा होकर राम, सीता के साथ रवाना होने लगे। उस समय लक्ष्मण पास में ही खड़े थे। राम को आते देख लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। राम ने उन्हें छाती से लगा लिया। फिर पर प्यार का हाथ फेर कर राम कहने लगे—'वत्स ! चिन्तित न होना। आनन्द में रहना। विलम्ब हो रहा है। विदा दो, मैं जाऊँ।'

लक्ष्मण—'प्रभो ! विदा किसे कहते हैं, यह तो मुझे मालूम ही नहीं।'

राम—इतने दिन मेरे साथ रहकर भी और इतना सब सुनकर भी तुम नहीं जान पाये ? भैया ! मैं तेरा हृदय जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा हृदय में वियोग से फट रहा है। पर यह तो नियति का विधान है [illegible] यह [illegible] प्रथम [illegible] इसमें [illegible] नहीं [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

करता था, उसका भार अब तुम्हारे कन्धों पर है। मेरे जाने के बाद कोई यह न कहने पाये कि राम के न होने से यह काम बिगड़ गया है! इसीलिए मैं तुम्हें यहाँ रख जाता हूँ। तुम प्रजा पालन में भरत की सहायता करना। तुम भरत के सहायक रहोगे तो प्रजा शांति का अनुभव करेगी।

लक्ष्मण—भ्राता! आपने नीति की सीख दी है। लेकिन नीति और धर्म की बात तो वही समझ पाता और पालता है जो बलवान् होता है। मैं बालक की तरह आपकी छाया में पला हूँ और आपका अनुचर हूँ। मेरे लिए नीति, धर्म या चाहे सो कहिए, आप ही हैं। आपको छोड़कर और कुछ भी मेरे लिए रुचिकर नहीं है। आप मुझ पर जो भार डाल रहे हैं वह मेरी शक्ति से परे है। मैं उस भार से दब जाऊंगा। मेरे लिए राम ही संसार है। राम को छोड़कर मैं और कुछ नहीं जानता।

यह कहते-कहते लक्ष्मण का कंठ भर आया। वे राम के पैरों में गिर पड़े। पैर पकड़ कर कहने लगे—मैं दास और आप स्वामी हैं। मैंने उत्तर प्रत्युत्तर करना छोड़ दिया है। जब से आपने मुझे समझाया, मैं मौन हूँ। मैंने दासभाव पकड़ रक्खा है। अब आप मुझे अलग रहने को कहते हैं सो इस पर मेरा कोई वश नहीं है। लेकिन आपका यह कहना पानी से मछली को अलग करने के लिए कहने के समान है। मछली पानी से जुदी की जा सकती है मगर वह जुदाई सह

नहीं सकती। आप मुझे अपने से जुदा कर सकते हैं मगर मैं जुदा रह नहीं सकता। शरीर नहीं तो आत्मा तो आपके साथ ही रहेगी।

लक्ष्मण ने जब से राम का त्याग-वैराग्य देखा था, तभी से सबके साथ की प्रीति तोड़कर उन्होंने राम में ही समग्र प्रीति केन्द्रित कर ली थी। इसी कारण लक्ष्मण जगत् के बड़े से बड़े मूल्यवान वैभव को भी ठुकरा सकते थे, मगर राम के चरणों से दूर नहीं हो सकते थे।

राम से प्रीति तो और लोग भी करते हैं पर उसकी परीक्षा समय आने पर ही होती है। आप यों तो राम से प्रेम करते हैं पर दुकान पर बैठ कर उन्हें भूल तो नहीं जाते! उस समय आपको राम की अपेक्षा दाम बड़ा तो नहीं मालूम होता? जिसने राम को बड़ा समझा होगा वह राज-पाट को भी तुच्छ ही समझेगा!

स्त्रियों को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहले पतिप्रेम के जल में स्नान करेंगी। पति-प्रेम के जल में किस प्रकार स्नान किया जाता है, यह बात सीता के चरित्र से समझ में आ सकती है। राम से पहले सीता का नाम लिया जाता है [illegible] स्नान [illegible] सबका [illegible]

[illegible] सभी

थी और लक्ष्मण मूर्छित हो गए थे, तब तुलसीदास के कथनानुसार संजीवनी बूटी लाई गई थी। लेकिन जैन रामायण का वर्णन कुछ भिन्न है। विशल्या नाम की एक सती थी। वह थी तो कुमारी, पर लक्ष्मण पर उसका अत्यधिक प्रेम था। राम को मालूम हुआ कि विशल्या के स्नान का जल आवे तो लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति भाग जाएगी। लोक में पानी तो गंगा आदि का भी पवित्र माना जाता है, लेकिन विशल्या के स्नान के जल में ही क्या ऐसी शक्ति थी कि उससे दैविक शक्ति भी नहीं ठहर सकती थी? शक्ति वास्तव में जल में नहीं, विशल्या के सत्य, शील में थी। उसी के सत्य, शील की शक्ति जल में आती थी। अगर जल में शक्ति होती तो विशल्या के स्नान के जल की क्या आवश्यकता थी? फिर तो कोई भी जल लक्ष्मण की लगी शक्ति को दूर कर सकता था।

हनुमानजी, विशल्या के स्नान का जल लेने गए। उन्होंने विशल्या से कहा—बहिन, अपने स्नान का जल दो?

विशल्या—मेरे स्नान के जल की क्यों आवश्यकता हुई?

हनुमान—लक्ष्मण को शक्ति लगी है। तुम्हारे स्नान के जल से उन्हें जीवित करना है

विशल्या सोचने लगी—मुझ [illegible] अपने इस सामर्थ्य का पता नहीं है [illegible] फिर [illegible] जल [illegible] है तो मुझ में शक्ति होगी ही [illegible] हृदय में पति मानती हूँ, इनके लिए स्नान का जल [illegible] मैं स्वयं क्यों न

थी और लक्ष्मण मूर्छित हो गए थे, तब तुलसीदास के कथनानुसार संजीवनी बूटी लाई गई थी। लेकिन जैन रामायण का वर्णन कुछ भिन्न है। विशल्या नाम की एक सती थी। वह थी तो कुमारी, पर लक्ष्मण पर उसका अत्यधिक प्रेम था। राम को मालूम हुआ कि विशल्या के स्नान का जल आवे तो लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति भाग जाएगी। लोक में पानी तो गंगा आदि का भी पवित्र माना जाता है, लेकिन विशल्या के स्नान के जल में ही क्या ऐसी शक्ति थी कि उससे दैविक शक्ति भी नहीं ठहर सकती थी? शक्ति वास्तव में जल में नहीं, विशल्या के सत्य, शील में थी। उसी के सत्य, शील की शक्ति जल में आती थी। अगर जल में शक्ति होती तो विशल्या के स्नान के जल की क्या आवश्यकता थी? फिर तो कोई भी जल लक्ष्मण को लगी शक्ति को दूर कर सकता था।

हनुमानजी, विशल्या के स्नान का जल लेने गए। उन्होंने विशल्या से कहा—बहिन, अपने स्नान का जल दो?

विशल्या—मेरे स्नान के जल की क्यों आवश्यकता हुई?

हनुमान—लक्ष्मण को शक्ति लगी है तुम्हारे स्नान के जल से उन्हें जीवित करना है

विशल्या सोचने लगी—मुझे तो अपने इस सामर्थ्य का पता नहीं है फिर भी जब यह कहते हैं तो मुझ में शक्ति होगी ही मगर जिन्हें मैं हृदय से पति मानती हूं, उनके लिए स्नान का जल क्यों भेजूं? मैं स्वयं क्यों न

कर मैं क्या करूँगा ? अवध के प्राण तो आप ही हैं। आपके चले जाने पर यह निष्प्राण है। मैं इस निष्प्राण अवध में क्या इसका प्रेतकर्म करने के लिए रहूँगा ?

संसार का स्वरूप समझ कर उससे विरक्त हो जाने वाला पुरुष मानता है, मानो संसार में आग लगी हुई है। उसी प्रकार लक्ष्मण कहते हैं, अवध में मानो आग लगी हुई है। ऐसा कहकर लक्ष्मण, रामविहीन स्थान की निन्दा कर रहे हैं। परस्त्री गमन का त्यागी पुरुष परस्त्री की और पर-पुरुष का त्याग करने वाली स्त्री परपुरुष की निन्दा करे तो कोई बुराई नहीं है। इसी प्रकार रामविहीन अवध की निन्दा करते हुए लक्ष्मण अपनी भावना की एकरूपता—निष्ठा—का परिचय दे रहे हैं।

लक्ष्मण ने कहा—'मैं पामर और तुच्छ हूँ। मुझे छोड़कर आपका वन जाना मुझे दोषी बनाना है। आप मुझे दोषी मत बनाइए।'

लक्ष्मण अगर घर रहते तो उन्हें कौन दोषी बनाता था ? घर रह कर वे माता-पिता की सेवा करते और राज्य की व्यवस्था में भी सहायता पहुँचा सकते थे। उन्हें दोषी कौन कह सकता था ? लेकिन उनका तर्क दूसरा है। लक्ष्मण का कथन यह है कि स्वामी की सेवा में उपस्थित रहना सेवक का कर्त्तव्य है। सेवा का विशेष अवसर आने पर स्वामी से जुदा हो जाना सेवक का दोष है। इस दोष से बचने के

कर मैं क्या करूंगा ? अवध के प्राण तो आप ही हैं। आपके चले जाने पर यह निष्प्राण है। मैं इस निष्प्राण अवध में क्या इसका प्रेतकर्म करने के लिए रहूँगा ?

संसार का स्वरूप समझ कर उससे विरक्त हो जाने वाला पुरुष मानता है, मानो संसार में आग लगी हुई है। उसी प्रकार लक्ष्मण कहते हैं, अवध में मानो आग लगी हुई है। ऐसा कहकर लक्ष्मण, रामविहीन स्थान की निन्दा कर रहे हैं। परस्त्री गमन का त्यागी पुरुष परस्त्री की और पर-पुरुष का त्याग करने वाली स्त्री परपुरुष की निन्दा करे तो कोई बुराई नहीं है। इसी प्रकार रामविहीन अवध की निन्दा करते हुए लक्ष्मण अपनी भावना की एकरूपता—निष्ठा—का परिचय दे रहे हैं।

लक्ष्मण ने कहा—'मैं पामर और तुच्छ हूँ। मुझे छोड़कर आपका वन जाना मुझे दोषी बनाना है। आप मुझे दोषी मत बनाइए।'

लक्ष्मण अगर घर रहते तो उन्हें कौन दोषी बनाता था ? घर रह कर वे माता-पिता की सेवा करते और राज्य की व्यवस्था में भी सहायता पहुंचा सकते थे। उन्हें दोषी कौन कह सकता था ! लेकिन उनका तर्क दूसरा है। लक्ष्मण का कथन यह है कि स्वामी की सेवा में उपस्थित रहना सेवक का कर्त्तव्य है। सेवा का विशेष अवसर आने पर स्वामी से जुदा हो जाना सेवक का दोष है इस दोष से बचने के

कर मैं क्या करूँगा ! अयोध्या के प्राण तो आप ही हैं। आपके चले जाने पर यह निष्प्राण है। मैं इस निष्प्राण अयोध्या में क्या इसका प्रेतकर्म करने के लिए रहूँगा ?

संसार का स्वरूप समझ कर उससे विरक्त हो जाने वाला पुरुष मानता है, मानो संसार में आग लगी हुई है। उसी प्रकार लक्ष्मण कहते हैं, अयोध्या में मानो आग लगी हुई है। ऐसा कहकर लक्ष्मण, रामविहीन स्थान की निन्दा कर रहे हैं। परस्त्री गमन का त्यागी पुरुष परस्त्री की और पर-पुरुष का त्याग करने वाली स्त्री परपुरुष की निन्दा करे तो कोई बुराई नहीं है। इसी प्रकार रामविहीन अयोध्या की निन्दा करते हुए लक्ष्मण अपनी भावना की एकरूपता—निष्ठा—का परिचय दे रहे हैं।

लक्ष्मण ने कहा—'मैं पामर और तुच्छ हूं। मुझे छोड़कर आपका वन जाना मुझे दोषी बनाना है। आप मुझे दोषी मत बनाइए।'

लक्ष्मण अगर घर रहते तो उन्हें कौन दोषी बनाता था ? घर रह कर वे माता-पिता की सेवा करते और राज्य की व्यवस्था में भी सहायता पहुंचा सकते थे। उन्हें दोषी कौन कह सकता था लेकिन उनका तर्क दूसरा है। लक्ष्मण का कथन यह है कि स्वामी की सेवा में उपस्थित रहना सेवक का कर्त्तव्य है। सेवा का विशेष अवसर आने पर स्वामी से जुदा हो जाना सेवक का दोष है इस दोष से बचने के

कर मैं क्या करूँगा ? अवध के प्राण तो आप ही हैं। आपके चले जाने पर यह निष्प्राण है। मैं इस निष्प्राण अवध में क्या इसका प्रेतकर्म करने के लिए रहूँगा ?

संसार का स्वरूप समझ कर उससे विरक्त हो जाने वाला पुरुष मानता है, मानो संसार में आग लगी हुई है। उसी प्रकार लक्ष्मण कहते हैं, अवध में मानो आग लगी हुई है। ऐसा कहकर लक्ष्मण, रामविहीन स्थान की निन्दा कर रहे हैं। परस्त्री गमन का त्यागी पुरुष परस्त्री की और परपुरुष का त्याग करने वाली स्त्री परपुरुष की निन्दा करे तो कोई बुराई नहीं है। इसी प्रकार रामविहीन अवध की निन्दा करते हुए लक्ष्मण अपनी भावना की एकरूपता—निष्ठा—का परिचय दे रहे हैं।

लक्ष्मण ने कहा—'मैं पामर और तुच्छ हूँ। मुझे छोड़कर आपका वन जाना मुझे दोषी बनाना है। आप मुझे दोषी मत बनाइए।'

लक्ष्मण अगर घर रहते तो उन्हें कौन दोषी बनाता था ? घर रह कर वे माता-पिता की सेवा करते और राज्य की व्यवस्था में भी सहायता पहुँचा सकते थे। उन्हें दोषी कौन कह सकता था ? लेकिन उनका तर्क दूसरा है। लक्ष्मण का कथन यह है कि स्वामी की सेवा में उपस्थित रहना सेवक का कर्त्तव्य है। सेवा का [illegible] अवसर आने पर स्वामी से जुदा हो जाना सेवक का दोष है इस दोष से बचने के

किया जा सकता है ?

अरणक की इस दृढ़ता से देव का भी गर्व मिट गया। वह निरभिमान होकर अरणक के पैरों में गिरा और कहने लगा—'आप वास्तव में धन्य हैं। मैं आपकी धर्मनिष्ठा की परीक्षा कर रहा था। आप धर्म में बहुत दृढ़ साबित हुए।'

रामायण में कहा है—रावण सीता से कहने लगा कि तुम मुझे स्वीकार कर लो, वनों में राम-लक्ष्मण आदि को यमलोक भेज दूंगा। सीता कृपालु थी या पापिनी थी? वह कृपालु होने पर भी अपने धर्म पर क्यों दृढ़ रही। धर्म पर दृढ़ रहने के कारण नाश किसका हुआ? यमलोक में कौन पहुँचा। धर्म पर दृढ़ रहने वाला कभी नष्ट नहीं होता।

लक्ष्मण कहते हैं—मैंने आपको ही धर्म और नीति मान लिया है। अब आप ही मुझसे बिछुड़ जाएंगे तो मेरे पास धर्म और नीति कैसे रहेगी? मुझे आपकी बतलाई हुई नीति भी उतनी प्रिय नहीं है, जितने आप स्वयं प्रिय हैं। जो अनन्य भाव से आपके चरणों में भक्ति रखता है, उसको भी आप त्याग कर जाएंगे?'

करुणासिन्धु राम ने लक्ष्मण की प्रीति देख कर उन्हें छाती से लगा लिया। भावावेग में उनका भी हृदय गद्गद् हो गया। वे बोले—लक्ष्मण, तुम्हारी परीक्षा हो गई। तुम्हें पाकर मैं निहाल हो गया। लोग कहते हैं कि राम ने राज्य छोड़ा है पर तुम्हारा-सा बन्धु पाकर मेरा राज्य त्यागना भी

सार्थक हो गया। तुम्हारी तुलना में राज्य तुच्छ है। अब तुम्हें भी माताजी से अनुमति लेनी चाहिए। अधिक नहीं है।'

राम की इस स्वीकृति से लक्ष्मण को इतना [illegible] जितना अंधे को आँख मिलने पर होता है। [illegible]वन जाने का सुअवसर पाकर वह जैसे कृतार्थ हो गए। लक्ष्मण की यह अवस्था देखकर देवता प्रसन्न हुए होंगे [illegible] दुखी हुए होंगे, कौन जाने? लक्ष्मण की करुणा देखकर [illegible] बार तो देवता भी कांप उठे होंगे।

कवियों ने लक्ष्मण के कथन को प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया है। वास्तव में लक्ष्मण की भक्ति को शब्दों में प्रकट करना कठिन है। हृदय की कोई भी गहरी मनोभावना शब्दों की पकड़ में नहीं आती।

लक्ष्मण बड़े बलवान् थे। वह सारे संसार का सामना कर सकते थे सारा संसार कदाचित् उनके विरोध में खड़ा हो जाय तो वह भी घबराने वाले नहीं थे। लेकिन राम की विरह की कल्पना से उनमें घबराहट पैदा हो गई। वीरता के साथ राम के प्रति उनकी इतनी गहरी [illegible] थी

लक्ष्मण [illegible] उनके [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

राम झरोखे बैठकर, सब का मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसा देय॥

छल-कपट करने वाले और मिथ्याभाषण करने वाले राम की गोद में कैसे बैठ सकते हैं ?

लक्ष्मण की माता कहती है—'राम की गोद में बैठ जाने के बाद तुम्हें कोई कष्ट नहीं हो सकता। पुत्र! अयोध्या वहीं है जहाँ राम हैं। जहाँ सूर्य है वहीं दिन है। जब राम ही अयोध्या छोड़ रहे हैं तो यहां तुम्हारा क्या काम है ? इसलिए तुम आनन्द के साथ जाओ। माता, पिता, गुरु, देव, बन्धु और सखा को प्राण के समान समझकर उनकी सेवा करना, यह नीति का विधान है। तुम राम को ही सब कुछ समझना और सर्वतो भाव से उन्हीं की सेवा में निरत रहना।

'वत्स! जननी के उदर से जन्म लेने की सार्थकता राम की सेवा करने में ही है। यह तुम्हें अपने जीवन का बहुमूल्य लाभ मिला है। पुत्र! तू आज बड़भागी हुआ। तेरे पीछे मैं भी भाग्यशालिनी हुई। सब प्रकार के छल-कपट छोड़कर तेरा चित्त राम में लगा है, इससे मैं तुझ पर बलि-बलि जाती हूँ। मैं उसी स्त्री को पुत्रवती समझती हूँ जिसका पुत्र सेवा-भावी, त्यागी, परोपकारी न्याय-धर्म से युक्त और सदाचारी हो। जिसके पुत्र में यह गुण नहीं होते उस स्त्री का पुत्र जनना वृथा है।'

बेटा सभी स्त्रियां चाहती हैं, लेकिन बेटा कैसा होना

चाहिए, यह बात कोई विरली ही समझती है। कहावत है—

जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै सूर।
नीतर रहे बांझड़ी, मती गँवावे नूर॥

बहिनें पुत्र को चाहती हैं पर यह नहीं जानना चाहतीं कि पुत्र कैसा होना चाहिए ? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसंस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेवारी आ जाती है, इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो जाता है।

माता सुमित्रा कहती है—वत्स ! तेरा भाग्य उदय करने करने के लिए ही राम वन जा रहे हैं। वह अयोध्या में में रहते तो सेवा करने वालों की कमी न रहती। वन में जाने वाली सेवा मूल्यवान् सिद्ध होगी। सेवक की परीक्षा संकट के समय पर ही होती है। राम वन न जाते तो तेरी परीक्षा कैसे होती ?

माता के हृदय में पुत्र और राम के वियोग की व्यथा कितनी गहरी होगी, इसका अनुमान करना कठिन है। लेकिन उसने धैर्य नहीं छोड़ा। वह लक्ष्मण से कहने लगी—वत्स ! राग, द्वेष और मोह त्याग करके राम और सीता की सेवा करना ! राम के साथ रह कर सब विकार तज देना। जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नहीं हो सकता। हे वत्स ! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनों भाई सूर्य और चन्द्र की भांति जगत का अन्धकार मिटाओ। प्रकाश फैलाओ। तुम्हारी कीर्ति अमर हो।

राम का वन-प्रस्थान

——::::()::::——

राम के वन-वास की बात सुनकर अयोध्या में किस प्रकार शोक की लहर दौड़ गई थी और किस प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना होने लगी थी, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले कराया गया है। अब, राम को वन जाने के लिए उद्यत देखकर और यह जान कर कि उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वन जा रहे हैं, जनता के धैर्य का बाँध टूट गया। लोग अत्यन्त व्याकुल, व्यथित विह्वल हो गए। जब राम, लक्ष्मण और सीता ही अयोध्या में न रहे तो अयोध्या सूनी ही समझो। अयोध्या की आत्मा जहाँ नहीं है वहाँ अयोध्या ही कहाँ! लोग विषाद से भरे हुए ऐसे मालूम होते, जैसे इनका सर्वस्व अभी-अभी आँखों देखते २ लुट गया हो। किसी को सूझ नहीं पड़ता कि इस समय क्या करना चाहिए? राम स्वेच्छा से वन जा रहे हैं यही सब से बड़ी कठिनाई है; अगर वे स्वेच्छा से न जाने होते तो किसकी ताकत थी जो उन्हें वन में भेज सके ... जनता का हार्दिक प्रेम और समर्थन जिसे प्राप्त हो उसे कौन निर्वासित कर

राम का वन-प्रस्थान

——::::()::::——

राम के वन-वास की बात सुनकर अयोध्या में किस प्रकार शोक की लहर दौड़ गई थी और किस प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी थी, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले करा दिया गया है। अब, राम को वन जाने के लिए उद्यत देखकर और यह जान कर कि उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वन जा रहे हैं, जनता के धैर्य का बाँध टूट गया। लोग अत्यन्त व्याकुल, व्यथित विह्वल हो गए। जब राम, लक्ष्मण और सीता ही अयोध्या में न रहे तो अयोध्या सूनी ही समझो। अयोध्या की आत्मा जहाँ नहीं है वहाँ अयोध्या ही कहाँ? लोग विषाद से भरे हुए ऐसे मालूम होते, जैसे इनका सर्वस्व अभी-अभी आँखों देखते २ लुट गया हो। किसी को पता नहीं पड़ता कि इस समय क्या करना चाहिए? राम स्वेच्छा से वन जा रहे हैं, यही सब से बड़ी कठिनाई है। अगर वे स्वेच्छा से न जाते होते तो किसकी ताकत थी जो उन्हें वन में भेज सके? [illegible] जनता का हार्दिक प्रेम और समर्थन जिसे प्राप्त हो, उसे कौन निर्वासित कर

सकता है ? यह सोच कर लोग रह जाते थे।

देखते-देखते अयोध्या की समस्त जनता राजमहल की ओर उमड़ पड़ी। नर-नारी, बालक-वृद्ध, जिसे देखो वही शोक की गहरी छाया लिए दशरथ के भवन की ओर चला जा रहा है। थोड़ी ही देर में महल प्रजा से घिर गया। स्त्रियाँ अलग और पुरुष अलग हो गए। स्त्रियों ने सीता को घेर लिया और पुरुषों ने राम को।

सौम्यवदना जानकी को देख कर अधिकांश स्त्रि अपना रुदन न रोक सकीं। कहने लगीं—आह ! सुकुमा सीता, किस स्थिति में रहने वाली और आज किस स्थिति जा रही है ! अदृष्ट ! तू कितना निष्ठुर है !

स्त्रियों में जो गम्भीर और पक्के जी की थीं, उन्ह कहा—रोती क्यों हो ? रोता वह है जो निराशावादी होता है आशावादी कभी नहीं रोता। अगर कोई व्यक्ति व्यापार निमित्त विदेश जाता है तो उसके लिए रोया नहीं जात क्योंकि उसके लौट कर आने की आशा है। जानकी जा र हैं, यह ठीक है; पर यह भी तो देखना चाहिए कि वह य जा रही हैं ? जानकी को न राजा भेज रहे हैं, न रानी केके भेज रही है। सीता को कोई कलंक भी नहीं लगा है, कलंक की मारी वन जाती हो। ऐसा होने पर भी जानकी के जाने का हमें गुण लेना चाहिए। इनके चरित से हमें बहुत सीख लेनी चाहिए। रोने से नहीं शिक्षा लेने से ही हमारा

कल्याण होगा और हमारे ऐसा करने से जानकी का वन जाना भी सार्थक हो जाएगा। इनका गुण गाओ बहिन, कि इन्होंने अपने असाधारण त्यागमय चरित के द्वारा स्त्री-समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलतर आदर्श उपस्थित कर दिया है जो युग-युग में नारी का पथप्रदर्शन करेगा। पथ-भ्रष्ट स्त्रियों के लिए यह एक महान उत्सर्ग बड़े काम का सिद्ध होगा।

एक हम हैं जिन्हें वन का नाम लेते ही बुखार चढ़ आता है और दूसरी यह सुकुमारी राजकुमारी है जो वन की विपदाओं को तुच्छ समझ कर अपने पति का अनुगमन करके वन को जा रही है। इन्होंने ससुराल और मायके को उजागर कर दिया।

सीता के कष्टों की कल्पना करके रोना वृथा है। जिसे कष्ट सहना है वह रोती नहीं, इसका ध्यान अपने धर्म की ओर ही है और तुम रोती हो! तुम भी अपने कर्त्तव्य की ओर दृष्टि दौड़ाओ।

इसी बीच दूसरी स्त्री ने कहा—हाय! कैकेयी का कलेजा कितना कठोर है! यह दृश्य देख कर तो पत्थर भी पिघल सकता है! वह नहीं पसीजा।

तीसरी ने कहा—फिर यह बात तुम कहती हो! सीता वन जाकर स्त्रियों को अबला कहने वाले पुरुषों को एक प्रकार से चुनौती दे रही है। सीता ने सिद्ध किया है कि

स्त्रियाँ शक्ति हैं। इनका वन जाना हमारे लिए अनमोल शिक्षा है।

चौथी स्त्री—ठीक कहती हो बहिन, पर हृदय नहीं मानता। जी चाहता है, सीता के साथ ही रहें—लौट कर घर न जाएँ।

पाँचवीं स्त्री—ऐसा सोचना वृथा है। सीता के चरित्र से जो शिक्षा मिल रही है उसे न ग्रहण करके सीता को ग्रहण करना भी व्यर्थ होगा। असली तत्त्व तो सीता द्वारा प्रदर्शित पथ है। उसी पथ पर हमें चलना चाहिए।

सीता का पथ कौन सा है? कैसा है? इसका उत्तर देना कठिन है। पूरी तरह उस पथ का वर्णन नहीं किया जा सकता। एक कवि ने कहा है—

[illegible]

[illegible]

स्त्रियाँ शक्ति हैं। इनका वन जाना हमारे लिए अनं
शिक्षा है।

चौथी स्त्री—ठीक कहती हो बहिन, पर हृदय न
मानता। जी चाहता है, सीता के साथ ही रहें—लौट
घर न आए।

पाँचवीं स्त्री—ऐसा सोचना वृथा है। सीता के व
से जो शिक्षा मिल रही है उसे न ग्रहण करके सीता
ग्रहण करना भी व्यर्थ होगा। असली तत्त्व तो सीता द्व
प्रदर्शित पथ है। उसी पथ पर हमें चलना चाहिए।

सीता का पथ कौन सा है? कैसा है? इसका उ
देना कठिन है। पूरी तरह उस पथ का वर्णन नहीं कि
जा सकता। एक कवि ने कहा है—

जेवा पावशों बनाव,
बचा मोक्ष की बारी।
पैडी ज्ञानकी मण्डोरा,
[illegible]

बुद्धिमती, धैर्य वाली और सती के महात्म्य को समझने वाली स्त्रियां सीता के वियोग में रोने वाली स्त्रियों से कहती हैं—हम भी सीता का मार्ग पकड़ें और अपना बहुमूल्य बनाव करें। इसके लिए सब से पहले पतिप्रेम के जल में स्नान करना पड़ेगा। साधारण जल ऊपर का मैल दूर करता है और वह भी सदा के लिए नहीं, किन्तु—

शील स्नानं सदा शुचिः।

शील का स्नान सदा के लिए पवित्र कर देता है। इसलिए पतिप्रेम के जल में स्नान करो और यह निश्चय करके स्नान करो कि चाहे आग में जलना पड़े, मगर पतिप्रेम से कभी विमुख न होंगी। इस प्रकार का स्नान करके फिर सीताजी जैसा वेष धारण करो। सीताजी ने क्या वेष लिया है? सुसराल और पीहर की प्रशंसा कराने का जो वेष उन्होंने पहना है, वह वेष हमें भी अपनाना है। सीताजी अब तक मूल्यवान वस्त्र और आभूषण पहनती रही हैं मगर उनकी प्रशंसा उन वस्त्राभूषणों के कारण नहीं हुई है। उनकी प्रशंसा तो उनके इन कार्यों से है जो सुसराल और मायके का यश उज्ज्वल बनाने के लिए वे सब कर रही हैं। स्त्रियों को मेंहदी लगाने का बहुत शौक होता है। मगर हम मेंहदी भी वैसी ही लगाना चाहिए जैसा जानकी ने लगाई है। सीता जब राम को वरने के लिए आई होगी तो हाथों-पैरों में मेंहदी लगाई

बुद्धिमती, धैर्य वाली और सती के माहात्म्य को समझने वाली स्त्रियां सीता के वियोग में रोने वाली स्त्रियों से कहती हैं—हम भी सीता का मार्ग पकड़ें और अपना बहुमूल्य बनाव करें। इसके लिए सब से पहले पतिप्रेम के जल में स्नान करना पड़ेगा। साधारण जल ऊपर का मैल दूर करता है और वह भी सदा के लिए नहीं, किन्तु—

शील स्नानं सदा शुचिः।

शील का स्नान सदा के लिए पवित्र कर देता है। इसलिए पतिप्रेम के जल में स्नान करो और यह निश्चय करके स्नान करो कि चाहे आग में जलना पड़े, मगर पतिप्रेम से कभी विमुख न होंगी। इस प्रकार का स्नान करके फिर सीताजी जैसा वेष धारण करो। सीताजी ने क्या वेष लिया है? ससुराल और पीहर की प्रशंसा कराने का जो वेष उन्होंने पहना है, वह वेष हमें भी अपनाना है। सीताजी अब तक मूल्यवान वस्त्र और आभूषण पहनती रही हैं मगर उनकी प्रशंसा उन वस्त्राभूषणों के कारण नहीं हुई है। उनकी प्रशंसा तो उनके इन कार्यों से है जो ससुराल और मायके का यश उज्ज्वल बनाने के लिए [illegible] है। स्त्रियों को मेंहदी लगाने का बहुत शौक होता [illegible] मगर हमें मेंहदी भी वैसी ही लगाना चाहिए जैसी जानकी ने लगाई है। सीता जब राम को वरने के लिए गई होगी तो हाथों-पैरों में मेंहदी लगाई

होगी। पर आज उनकी मेंहदी देखो ! पति के अनुराग की लालिमा से उनका हृदय अनुरक्त हो रहा है। असल में स्त्री का हृदय पति प्रेम में रंगा होना चाहिए, लाली चमड़ी रंगने से क्या होता है ! उनके हृदय का अनुराग ही हिलोरें मार रहा है और उन्हीं हिलोरों में सीता वन की ओर बही चली जा रही हैं। सीता ने सोचा होगा—घर पर रहकर दास-दासियों के मारे पति की पुनीत सेवा करने का पूरा अवसर नहीं मिलता। वन में अच्छा अवसर मिलेगा। इस प्रकार सीता पति की सेवा के लिए वन जा रही हैं तो क्या हम घर रहकर भी पति की सेवा नहीं कर सकतीं !

प्राचीन काल का दाम्पत्य संबंध कैसा आदर्श था ! पत्नि अपने आपको पति में विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगना, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय स्वामिनी समझता था ! एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी। एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था। यहां अधिकारों की मांग नहीं थी, सिर्फ समर्पण था। जहां दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं वहां एक को हक मांगने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य संबंध किसी समय भारतवर्ष में था। आज विदेशों के अनुकरण पर-जहाँ दाम्पत्य संबंध नाम मात्र का है—भारत में भी विकृति आ

नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनों के सहारे समाना-
धिकार की स्थापना की जा रही है ! आज की पढ़ी-लिखी
स्त्री कहती है—

मैं फंगोली पर नहीं बैठा ।
रोटी नहीं पकाऊँगी ॥

शिक्षा का परिणाम यह निकला है ! पहले की स्त्रियाँ
प्रायः सब काम अपने हाथों से करती थीं । आजकल सभी
काम नौकरों द्वारा कराये जाते हैं । परिणाम यह हुआ कि
डाक्टरों की बाढ़ आ गई और स्त्रियों को डाकिन-भूत लगने
लगे । स्त्रियों के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग
होते हैं और डाकिन-भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं ।
अगर स्त्री को मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयों को
छोड़ना पड़ेगा ।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने में पाप लगना
समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने में पाप से बच जाने
की कल्पना करती हैं । पीसने में आरंभ तो होता ही है लेकिन
अपने हाथ से यतना और विवेक के साथ काम किया जाय
तो बहुत से निरर्थक पापों से बचाव भी हो सकता है । शक्ति
होते हुए दूसरे से काम कराना एक प्रकार की कायरता है
और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है ।
इस प्रकार का पराश्रयी जीवन बिताना अपनी शक्ति की
घोर अवहेलना करना है

होगी। पर आज उनकी मेंहदी देखो ! पति के अनुराग की लालिमा से उनका हृदय अनुरक्त हो रहा है। असल में स्त्री का हृदय पति प्रेम में रंगा होना चाहिए, खाली मेंहदी रंगने से क्या होता है ! उनके हृदय का अनुराग ही हिलोरें मार रहा है और उन्हीं हिलोरों में सीता वन की ओर बही चली जा रही हैं। सीता ने सोचा होगा—घर पर रहकर दास-दासियों के मारे पति की पुनीत सेवा करने का पूरा अवसर नहीं मिलता। वन में अच्छा अवसर मिलेगा। इस प्रकार सीता पति की सेवा के लिए वन जा रही हैं तो क्या हम घर रहकर भी पति की सेवा नहीं कर सकतीं !

प्राचीन काल का दाम्पत्य संबंध कैसा आदर्श था ! पत्नि अपने आपको पति में विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगिनी, अपनी शक्ति, अपनी लक्ष्मी और अपनी हृदय स्वामिनी समझता था ! एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी। एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था [illegible] अधिकारों की मांग नहीं थी सिर्फ [illegible] हृदय [illegible] हो जाते हैं वहाँ [illegible]

[illegible]

नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनों के सहारे समानाधिकार की स्थापना की जा रही है! आज की पढ़ी-लिखी स्त्री कहती है—

मैं अंगरेजी पढ़ गई सैंया।
रोटी नहीं पकाऊँगी॥

शिक्षा का परिणाम यह निकला है! पहले की स्त्रियाँ प्रायः सब काम अपने हाथों से करती थीं। आजकल सभी काम नौकरों द्वारा कराये जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरों की बाढ़ आ गई और स्त्रियों को डाकिन-भूत लगने लगे। स्त्रियों के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग होते हैं और डाकिन-भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयों को छोड़ना पड़ेगा।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने में पाप लगना समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने में पाप से बच जाने की कल्पना करती हैं। पीसने में आरंभ तो होना ही है लेकिन अपने हाथ से यतना और विवेक के साथ काम किया जाय तो बहुत से निरर्थक पापों से बचा जा सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना एक प्रकार की कायरता है और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का [illegible] करना है। इस प्रकार का [illegible] जीवन [illegible] अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना है

संतोष और धैर्य की जिन्दगी साक्षात् वरदान है। असंतोष अधीरता जीवन का अभिशाप है।

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—सीता ने क्षमा का नौलड़ा हार पहन रक्खा है। ऐसा ही हार हमें पहनना चाहिए। यद्यपि कैकेयी की वर-याचना के फलस्वरूप उनके पति को और उनको वन जाना पड़ रहा है, फिर भी इनके चेहरे पर रोष का लेशमात्र भी कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता। उनकी मुद्रा कितनी शान्त और गंभीर है! अगर इनमें धैर्य न होता तो वह तुम्हारी तरह रोने लगती। अगर वह अपनी आँख टेढ़ी करके कह देती कि मेरे पति का राज्य लेने वाला कौन है! तो किसका साहस था कि वह राज्य ले सके। सारी अयोध्या उनके पीछे थी। लक्ष्मण उनके परम सहायक थे और वे अकेले ही सब के लिए काफी थे। सीता चाहती तो मिथिला से फौज मँगवा सकती थी। लेकिन नहीं, सीता ने क्षमा का हार पहन रक्खा है ऐसा हार हमें भी पहनना चाहिए।

सीता के हाथ में आज केवल मंगल-चूड़ी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है मगर उन्होंने अपने हाथों में इस लोक और परलोक को सुधारने का चूड़ा पहन रक्खा है। ऐसा ही चूड़ा हमें भी पहनना चाहिए उभय लोक के सुधार का मंगलमय चूड़ा न पहना तो न मालूम अगले जन्म में कैसी बुरी गति मिलेगी

आजकल मारवाड़ में आभूषण पहनने की प्रथा बहुत पड़ी

है। बोर तो अनार हो गया है। बोर तो बोर (बेर) के बराबर ही हो सकता है, पर बढ़ते-बढ़ते वह अनार से भी बाजी मार रहा है। जेवरों के वृद्धि के साथ ही विकार में भी प्राय वृद्धि होने लगती है।

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—सीताजी ने गुरु जनों की आज्ञापालन रूपी बोर अपने मस्तक पर धारण किया है। ऐसा ही बोर स्त्रियों को धारण करना चाहिए। उन्होंने कैकेयी जैसी सास का भी मान रक्खा है। अगर हम जरा-सी बात पर भी बड़ों का अपमान करें तो हमारा यह बोर पहनना वृथा हो जायगा।

सच्ची सीख ने करणफूल,
कानन करी।
झूठा बगला बनाय,
देख क्यों वृथा लड़ी।
हिया मोय अमोल,
लाज लोक पैर डारी।
सब बाहर का बनाव
[illegible]

[illegible] चाहिए। [illegible] सीता ने उन्हीं की शिक्षा ग्रहण की है [illegible] की शिक्षा

रूपी कर्णफूल पहनने का निश्चय करें। अगर शिक्षा के कर्ण-फूल न पहिने तो इन दिखावटी कर्णफूलों का पहनना वृथा हो जायगा। बाहर का बनाव सच्चा होता तो सीताजी उसका त्याग क्यों करतीं? बाहरी बनाव का त्याग करके और भीतरी बनाव को धारण करके आज वह कितनी भव्य, कितनी सौम्य और कितनी श्रद्धास्पद हो गई हैं! सीता को देखते हुए भी हम उनका अनुकरण न कर सकीं और बाहरी बनाव के लिए ही झगड़ती रहीं तो हमारा यह सौभाग्य भी निरर्थक हो जायगा। बाहर के शृंगार को जो नहीं छोड़ सकता, कदाचित् न छोड़े। मगर उसी को सब कुछ समझ लेना बड़ी नासमझी है। हमारी अन्तरात्मा में शील और संतोष का जो खज़ाना भरा पड़ा है, उसी को प्रकट करने की आवश्यकता है। उस पर अधिकार कर लिया जाय तो बाहरी आभूषण चाहे हों, चाहे न हों। फिर इनका कोई मूल्य नहीं है।

इस प्रकार सीता का सच्चा अनुकरण करने से ही हमारा मङ्गल होगा। हमें मोह त्याग कर ज्ञान की दृष्टि से सीता का स्वरूप देखना चाहिए

सीता जब वन-वास के लिए निकली थीं तब के लिए कवि ने जो कल्पना की है वह इस प्रकार है—कैकेयी की कुबुद्धि के कारण अयोध्या में आग सी लग गई थी। सब ओर हाय हाय की ध्वनि ही सुनाई देती थी। नगर की स्त्रियां

उसके कारण बहुनों के आँसू बहते ही रहे। बहुत-सी फूल-सी सुकुमारी स्त्रियां सीता के सामने दोनों ओर खड़ी होकर आंसुओं से उनकी अर्चना करने लगीं।

सीता, राम और लक्ष्मण जिस मार्ग से जा रहे थे, उसके दोनों ओर पुरनारियों और पुरकन्याओं की कतारें खड़ी हो गईं। उनके नयन-कमलों के आंसू रूपी फूल सीता-राम को विदाई दे रहे थे।

कोई कहता था—वज्रहृदय कैकेयी ने राम का राज्य छीन लिया मगर हमारे हृदय पर उनका जो राज्य है, देखें उसे कौन छीन सकता है।

बहुत-से नर-नारी कहते थे—जहाँ राम रहेंगे, जहाँ सीता और लक्ष्मण रहेंगे, वहीं हम भी रहेंगे। हम इन्हें हर्गिज़ नहीं छोड़ेंगे। भरत अयोध्या की ईंटों पर—अयोध्या के खाली मकानों पर अपना शासन चलावें। हम वहीं अवध बना लेंगे जहां राम होंगे। इस प्रकार निश्चय करके अयोध्यावासी राम के पीछे पीछे चलने लगे।

लक्ष्मण सोचने लगे—प्रजा को समझाना बहुत कठिन है। उन्होंने सीताजी की ओर देखा और संकेत करके कहा—जरा पीछे तो देखो। हम तो राम की सेवा के लिए उनके साथ वन जा रहे हैं, मगर इस प्रजा का क्या हाल है? लोग किस दुख से दुखी हैं! भैया ने मुझे तो समझा लिया, लेकिन इस जनसमूह को किस प्रकार समझाएंगे?

[इ]नका भ्रातृप्रेम धन्य है और प्रजाप्रेम भी धन्य है। इन्हीं [गु]णों से खिंचे हुए नर-नारी उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। [इन्हों]ने अवध का छोटा-सा राज्य त्याग कर प्रजा के हृदय [प]र कैसा आधिपत्य जमा लिया है! यह कोलाहल तभी तक [है ज]ब तक स्वामी बोलते नहीं हैं। उनकी मधुर वाणी सुनते [ही] लोग एकदम शांत हो जाएंगे। इस प्रकार का विचार [क]रके सीता हर्षित हुई।

लोग कहते थे-'स्वार्थ तो सब में होता है लेकिन उसकी [सी]मा होती है। कैकेयी ने उस सीमा को भी भंग कर दिया। [सी]मा टूट जाने पर स्वार्थ क्या-क्या नीच काम नहीं करवा[ता]! उसने एक राजरानी को भी इतना पतित कर दिया।

स्वार्थ ऐसे-ऐसे जघन्य कार्य करवाता है कि कहा नहीं [जा] सकता। [illegible] एक पिता ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कैकेयी [illegible]

उनका भ्रातृप्रेम धन्य है और प्रजाप्रेम भी धन्य है। इन्हीं
ों से खिंचे हुए नर-नारी उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं।
ोंने अवध का छोटा-सा राज्य त्याग कर प्रजा के हृदय
कैसा आधिपत्य जमा लिया है! यह कोलाहल तभी तक
ब तक स्वामी बोलते नहीं हैं। उनकी मधुर वाणी सुनते
लोग एकदम शांत हो जाएंगे। इस प्रकार का विचार
के सीता हर्षित हुईं।

लोग कहते थे-'स्वार्थ तो सब में होता है लेकिन उसकी
ा होती है। कैकेयी ने उस सीमा को भी भंग कर दिया।
ा टूट जाने पर स्वार्थ क्या-क्या नीच काम नहीं करवा
! उसने एक राजरानी को भी इतना पतित कर दिया।
स्वार्थ ऐसे-ऐसे जघन्य कार्य करवाता है कि कहा नहीं
सकता। खाचरोद (मालवा) की बात है। एक पिता ने
ा लड़का उसके मामा को सौंप कर कहा—इसे अपने
लेते जाना। उस लड़के के हाथ में दस-पांच रुपये के
थे। कड़े देखकर मामा के मन में लालच आ गया। उसने
े को मार कर जंगल में [illegible] और कड़े ले लिए
पांच रुपयों के लिए [illegible] ने [illegible] की हत्या कर
! यह स्वार्थ का [illegible]
[illegible] चीज के लिए [illegible]
उतारू हो जाता है

कैकेयी ने भी [illegible] की सीमा [illegible]

स्वार्थ-त्याग की सीमा का उल्लंघन कर दिया। एक ही साथ स्वार्थ और स्वार्थ-त्याग के उदाहरण यहाँ सामने आ जाते हैं। अब आप को कौन-सा उदाहरण ग्रहण करना है? अगर आपने राम का स्वार्थत्याग का उदाहरण अपना लिया तो राम की तरह ही आपका कल्याण होगा। अगर कैकेयी का अनुकरण किया तो कैकेयी की नाईं ही पश्चात्ताप की आग में जलना होगा। दोनों मार्ग आपके सामने हैं। जी चाहे जिस पर चल सकते हो। मनुष्य हो, विवेक को आगे करके चलो।

राम ने स्वार्थत्याग की पराकाष्ठा कर दी थी। कहाँ अयोध्या का राज्य और कहाँ वन-वास! किसी साधारण आदमी को ऐसी परिस्थिति में कितना कष्ट न होता! किसी का जूता गुम जाय और नंगे पैर चलना पड़े तब भी उसे कष्ट होता है, फिर राम का तो राज्य ही चला जा रहा था। उन्हें कितना कष्ट होना चाहिए था! मगर राम को कैसी? [illegible]

[illegible]

लोग दुःख मनाते हैं। यह नहीं सोचते कि वास्तव में जो
है वह मेरे पास से जा नहीं सकता और जो जा सकता
वह मेरा नहीं है। जो वास्तव में मेरा नहीं है, उसके लिए
चिन्ता क्यों करूं? प्रिय वस्तु के विछोह के समय हृदय से
का स्मरण करो। तुम्हारी सब चिन्ताएं चूर-चूर हो
एंगी और शांति मिलेगी। मत भूलो कि राज्याभिषेक के
ल-मुहूर्त में वन-वास मिलने पर भी राम प्रसन्न ही
रहे थे।

समुद्र वर्षा या गर्मी के कारण घटता-बढ़ता नहीं है।
पुरुष को 'सागरवरगंभीरा' की उपमा दी जाती है।
सका आशय यही है कि वे सुख के समय फूलते नहीं और
ख के समय घबराते नहीं हैं।

जब राम वन को जाने लगे तो महाराज दशरथ ने कहला
जा था कि राम, लक्ष्मण और सीता कम से कम नगर में
दल न चलें—रथ में बैठकर जावें मेरी अंतिम इच्छा को
म अवश्य स्वीकार करें।

प्रजा का सत्याग्रह

जो राम पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए इतना त्याग
रने के लिए तैयार हो गए थे उनसे यह आशा करने की जा
कती थी कि वे पिता के इस अंतिम आदेश का पालन न
रेंगे। यद्यपि उनकी इच्छा राज्य की किसी भी वस्तु का उप-

योग करने की नहीं थी, तथापि पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने नगर में रथ पर सवार होकर निकलने का किया। जैसे-जैसे राम का रथ आगे बढ़ता गया प्रजा की अधीरता और व्याकुलता भी बढ़ती गई। कुछ लोगों का धैर्य समाप्त हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि या तो राम को रोकेंगे या हम भी उन्हीं के साथ जाएँगे। इस प्रकार निश्चय करके सैकड़ों मनुष्य रथ के आगे लेट गए। उन्होंने कहा—'अगर आपको जाना ही है तो रथ हमारी छाती के ऊपर से ले जाइए। अन्यथा या तो आप नहीं जा सकते या हम लोग भी साथ चलेंगे।

राम ने सारथी को रथ रोकने का आदेश दिया। रथ रोक दिया गया। प्रजा की ऐसी प्रीति देखकर गम्भीर राम का हृदय भी विचलित हो गया। कंठ गद्‌गद हो गया। मगर अवसर देखकर उन्होंने तत्काल अपने आपको सँभाल लिया। राम ने रथ को ही व्यासपीठ बनाया और उसके ऊपर खड़े होकर कहने लगे प्रजाजनो! उठो। यह क्या कर रहे हो? तुमने यह क्या दृश्य उपस्थित कर दिया है? उठो और ध्यान से मेरी बात सुनो।

राम का यह कथन सुनकर प्रजाजन सोचने लगे—अगर हम [illegible] राम का रथ लौट गया तो हम क्या करेंगे [illegible] कर लोग पहुँ- [illegible] ही राम भी दौड़ [illegible] मानकर रोने लगे। राम ने

चाहे तुम उठकर सुनो, चाहे पड़े-पड़े सुनो, पर सुनो। किसी भी तरह सुनो पर मेरी बात सुनो और उस पर विचार करो।

इतना कहकर प्रजाजनों को सम्बोधन करके राम बोले—क्या आप रो-रो कर हमें विदाई देना चाहते हैं? अपने इष्ट मित्र को क्या इसी प्रकार विदा किया जाता है? रो कर विदाई उसे दी जाती है जो वापिस लौटकर आने वाला न हो। क्या आप यह चाहते हैं कि हम लौट कर न आवें? अगर आपको हमारा वापिस आना अभीष्ट है तो आप हँसते हुए ही विदा दीजिए और अपने-अपने घर लौट जाइए। सब काम अवसर पर ही होते हैं। जाने के अवसर पर हम जा रहे हैं तो आने के अवसर पर लौट भी आवेंगे। इसलिए आप चिन्ता और शोक त्याग कर लौट जाइए।

राम की बात सुनकर प्रजाजन कहने लगे—आपकी वाणी ने तो उल्टा हमें ही अपराधी बना दिया। आपने हमें रोने के योग्य भी नहीं रखा। आप हम से हाथ छुड़ाकर जाते हैं और कहते हैं कि [illegible] लेकिन [illegible]

योग करने की नहीं थी, तथापि पिता की आज्ञा शिरोधार्य उन्होंने नगर में रथ पर सवार होकर निकलने का निश्चय किया। जैसे-जैसे राम का रथ आगे बढ़ता गया प्रजा की अधीरता और व्याकुलता भी बढ़ती गई। आखिर कुछ लोगों का धैर्य समाप्त हो गया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि या तो राम को रोकेंगे या हम भी उन्हीं के साथ जाएंगे। इस प्रकार निश्चय करके सैकड़ों मनुष्य रथ के रास्ते में लेट गए। उन्होंने कहा-'अगर आपको जाना ही है तो रथ हमारी छाती के ऊपर से ले जाइए। अन्यथा या तो आप नहीं जा सकते या हम लोग भी साथ चलेंगे।

राम ने सारथी को रथ रोकने का आदेश दिया। रथ रोक दिया गया। प्रजा की ऐसी प्रीति देखकर गम्भीर राम का हृदय भी विचलित हो गया। कंठ गद्गद हो गया। मगर अवसर देखकर उन्होंने तत्काल अपने आपको सँभाल लिया। राम ने रथ को ही व्याख्यानपीठ बनाया, और उसके ऊपर खड़े होकर कहने लगे-प्रजाजनो! उठो। यह क्या कर रहे हो! तुमने यह क्या दृश्य उपस्थित कर दिया है? उठो और ध्यान से मेरी बात सुनो।

राम का यह कथन सुनकर प्रजाजन सोचने लगे-अगर हम [illegible] रथ दौड़ गया तो हम क्या करेंगे। इस प्रकार विचार कर लोग पड़े-पड़े ही राम की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। राम ने

कहा—चाहे तुम उठकर सुनो, चाहे पड़े-पड़े सुनो, पर सुनो। किसी भी तरह सुनो पर मेरी बात सुनो और उस पर विचार करो।

इतना कहकर प्रजाजनों को सम्बोधन करके राम बोले—क्या आप रो-रो कर हमें विदाई देना चाहते हैं? अपने इष्ट मित्र को क्या इसी प्रकार विदा किया जाता है? रो कर विदाई उसे दी जाती है जो वापिस लौटकर आने वाला न हो। क्या आप यह चाहते हैं कि हम लौट कर न आवें? अगर आपको हमारा वापिस आना अभीष्ट है तो आप हँसते हुए ही विदा दीजिए और अपने-अपने घर लौट जाइए। सब काम अवसर पर ही होते हैं। जाने के अवसर पर हम जा रहे हैं तो आने के अवसर पर लौट भी आएँगे। इसलिए आप चिन्ता और शोक त्याग कर लौट जाइए।

राम की बात सुनकर प्रजाजन कहने लगे—आपकी वाणी ने तो उलटा हमें ही अपराधी बना दिया। आपने हमें रोने के योग्य भी नहीं रक्खा। आप हम से नाता तुड़ाकर जाते हैं और कहते हैं कि [illegible] लेकिन हमने आपको [illegible] देते हुए नहीं किन्तु [illegible] अपनी माता से [illegible] अपने पद मांगते हैं कि [illegible] महाराजा ने आपको राजा चुना है और यह चुनाव प्रजा को भी इष्ट है

हम हृदय से आपको ही राजा मानते हैं। फिर हम लोगों की अवहेलना करके क्यों जा रहे हैं! प्रजा का अभिमत आपको नहीं ठुकराना चाहिए। आप अकेली कैकेयी के कहने से समस्त प्रजा की इच्छा विरुद्ध कार्य कैसे कर सकते हैं? क्या अयोध्या की समस्त प्रजा अकेली महारानी कैकेयी के मुकाबिले में कुछ नहीं है? क्या हम सब एक व्यक्ति के सामने तुच्छ हैं? नहीं जनमत का आदर आपको करना [illegible] अपनी यात्रा स्थगित कीजिए और अयोध्या का राज्य सँभालिए।

मुख्य-मुख्य लोगों ने जब इस प्रकार कहा तब भी लोग रास्ते में लेटे रहे।

प्रजा को प्रतिबोध

राम कहने लगे—प्रजाजनो! तुम्हारी बात सुनकर मुझे तुम्हारे प्रति और अधिक प्रेम हुआ है। जिसे प्रजा का ऐसा प्रेम प्राप्त है, वह भाग्यवान है। मगर मैं जानना चाहता हूँ कि प्रजा मुझ से प्रेम क्यों करती है? मैं धर्म का और न्याय का [illegible] करता हूँ। इसी कारण प्रजा मुझसे [illegible] मैं धर्म का पालन [illegible] जिस धर्म के कारण प्रजा मुझसे [illegible] पालन करने के लिए [illegible] धर्म से विमुख

गो जाऊँगा। क्या आप इसे पसंद करेंगे? क्या आप मुझे धर्म से भ्रष्ट हुआ देखना चाहते हैं? धर्म से पतित राम अगर आपके बीच में रहा भी तो आपका क्या गौरव है? आप जिस धर्म की बदौलत मुझे चाहते हैं, उस धर्म का पालन करने के लिए मुझे सभी कुछ करना होगा—सभी कुछ सहना होगा। इसी में मेरा और आपका गौरव है। जिस धर्म के कारण आप मुझे मानते हैं, वही धर्म मुझसे छुड़वा रहे हैं, इसी को मोह कहते हैं। आप मेरे वियोग के दुःख से घबरा कर मेरे जाने का विरोध करते हैं। लेकिन धर्म-पालन के अवसर पर सदा साथ नहीं रह सकते। विवाह के समय ग्रंथिबन्धन होता है अगर वह जैसा का तैसा बना रहे—ग्रंथिमोचन न किया जाय तो काम नहीं चल सकता। इसी-लिए बंधी हुई गांठ खोल दी जाती है। लेकिन आप तो उस ग्रंथि को बंधी हुई ही रखना चाहते हैं। उचित यह है कि वह ग्रंथि हृदय में बनी रहे—स्नेह के रूप में पक्की होकर रहे, मगर शरीर से धर्म पालन के लिए हटा दी जाय। अगर आप तो धर्म [illegible] उचित हो [illegible] छोड़ने का [illegible]

करना कठिन माना जाता है, उसके पालन करने का मुझे सहज ही योग मिला है। फिर सहज सुयोग पाकर कौन विवेकी धर्म नहीं पालेगा?

आप माता कैकेयी को वृथा दोष देते हैं। यह तो मेरे सद्भाग्य का ही फल समझिए कि अचानक सत्कर्म करने का अवसर मुझे मिल गया है। नहीं तो कौन जानता था कि मुझे यह अपूर्व लाभ मिलेगा? माता कैकेयी को आप भी धन्यवाद दीजिए, जिनकी कृपा से मुझे धर्मपालन का अवसर मिल सका है।

प्रजाजनो! मैं रूठ कर वन नहीं जा रहा हूँ। न भय से, न दुर्बलता से और न स्नेह-रहित होकर ही जा रहा हूँ। क्या आपको यह अभीष्ट होगा कि पिताजी की प्रतिज्ञा असत्य साबित हो? आप हम भाइयों में आपसी कलह होना पसंद करेंगे? मैं चाहूँ तो अभी-अभी राज्य पर अधिकार कर सकता हूँ, मगर पिता का और धर्म का न होने वाला राम क्या प्रजा का होगा? और फिर ऐसे धर्मत्यागी अयोग्य पुरुष को आप राजा बनाना अच्छा समझेंगे?

इसके अतिरिक्त भरत मेरा भाई है। वह आपका राजा हुआ है। उसमें राजा होने की सब योग्यताएँ हैं। अगर वह योग्य न होता तो मैं माता के प्रस्ताव का घोर विरोध करता। आप नहीं जानते कि भरत कौन है? भरत को जब आप भलीभांति पहचान जाएँगे तो उसके राजा होने पर आपको

उतनी ही प्रसन्नता होगी, जितनी मेरे राजा होने पर होती। मुझमें और भरत में कोई भेद नहीं है। प्रेम और भक्ति में जो संबंध है वही मुझमें और भरत में है। भरत और राम एक ही मूँग के दाने की दो फाड़ हैं। अगर आपको मुझ पर विश्वास है और आपने मुझे राजा चुना है तो आपको मेरी बात मानना चाहिए। मैं कहता हूँ—आपका राजा भरत है। आप भरत को ही अपना राजा समझें। अगर आप ऐसा नहीं करते तो मैं समझूंगा कि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा भाई भरत मेरी ही तरह प्रजा का पालन करेगा। इसीलिए आप उठें और रथ आगे बढ़ने दें। मुझे आशीर्वाद दें कि वन में मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर सकूं। आप सब की सद्भावनाओं से वन के कांटे भी मेरे लिए फूल हो जाएंगे।'

राम ने प्रजा का आशीर्वाद मांगा है। अब विचारणीय यह है कि राम बड़े हैं या प्रजा बड़ी है? अगर प्रजा बड़ी न होती तो राम प्रजा का आशीर्वाद क्यों मांगते? वास्तव में सब की शक्ति बड़ी [illegible] कर हो सकते हैं [illegible] आशीर्वाद मांगा है

[illegible]
प्रयोजन [illegible]
[illegible]

करना कठिन माना जाता है, उसके पालन करने का मुझे सहज ही योग मिला है। फिर सहज सुयोग पाकर कौन विवेकी धर्म नहीं पालेगा ?

आप माता कैकेयी को वृथा दोष देते हैं। यह तो मेरे सद्भाग्य का ही फल समझिए कि अचानक सत्कर्म करने का अवसर मुझे मिल गया है। नहीं तो कौन जानता था कि मुझे यह अपूर्व लाभ मिलेगा ? माता कैकेयी को आप भी धन्यवाद दीजिए, जिनकी कृपा से मुझे धर्मपालन का अवसर मिल सका है।

प्रजाजनो ! मैं रूठ कर वन नहीं जा रहा हूँ। न भय से, न दुर्बलता से और न स्नेह-रहित होकर ही जा रहा हूँ। क्या आपको यह अभीष्ट होगा कि पिताजी की प्रतिज्ञा असत्य साबित हो ? आप हम भाइयों में आपसी कलह होना पसंद करेंगे ? मैं चाहूँ तो अभी-अभी राज्य पर अधिकार कर सकता हूँ, मगर पिता का और धर्म का न होने वाला राम क्या प्रजा का होगा ? और फिर ऐसे धर्मत्यागी अयोग्य पुरुष को आप राजा बनाना अच्छा समझेंगे ?

इसके अतिरिक्त भरत मेरा भाई है। वह आपका राजा हुआ है। उसमें राजा होने की सब योग्यताएं हैं। मगर वह योग्य न होता तो मैं माता के प्रस्ताव का घोर विरोध करता। आप नहीं जानते कि भरत कौन है ? भरत को जब आप भलीभांति पहचान जाएंगे तो उसके राजा होने पर आपको

उतनी ही प्रसन्नता होगी, जितनी मेरे राजा होने पर होती। मुझमें और भरत में कोई भेद नहीं है। प्रेम और भक्ति में जो संबंध है वही मुझमें और भरत में है। भरत और राम एक ही मूंग के दाने की दो फाड़ हैं। अगर आपको मुझ पर विश्वास है और आपने मुझे राजा चुना है तो आपको मेरी बात मानना चाहिए। मैं कहता हूँ—आपका राजा भरत है। आप भरत को ही अपना राजा समझें। अगर आप ऐसा नहीं करते तो मैं समझूंगा कि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा भाई भरत मेरी ही तरह प्रजा का पालन करेगा। इसीलिए आप हटें और रथ आगे बढ़ने दें। मुझे आशीर्वाद दें कि वन में मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर सकूं। आप सब की सद्भावनाओं से वन के कांटे भी मेरे लिए फूल हो जाएंगे।

राम ने प्रजा का आशीर्वाद मांगा है। अब विचारणीय यह है कि राम बड़े हैं या प्रजा बड़ी है? अगर प्रजा बड़ी न होती तो राम प्रजा का आशीर्वाद क्यों मांगते? वास्तव में सब की शक्ति बड़ी [illegible] कर ही सकते हैं [illegible] मांगा है

[illegible]

करना कठिन माना जाता है, उसके पालन करने का मुझे सहज ही योग मिला है। फिर सहज सुयोग पाकर कौन विवेकी धर्म नहीं पालेगा ?

आप माता कैकेयी को वृथा दोष देते हैं। यह तो मेरे सद्भाग्य का ही फल समझिए कि अचानक सत्कर्म करने का अवसर मुझे मिल गया है। नहीं तो कौन जानता था कि मुझे यह अपूर्व लाभ मिलेगा ? माता कैकेयी को आप भी धन्यवाद दीजिए, जिनकी कृपा से मुझे धर्मपालन का अवसर मिल सका है।

प्रजाजनो ! मैं रूठ कर वन नहीं जा रहा हूँ। न भय से, न दुर्बलता से और न स्नेह-रहित होकर ही जा रहा हूँ। क्या आपको यह अभीष्ट होगा कि पिताजी की प्रतिज्ञा असत्य साबित हो ? आप हम भाइयों में आपसी कलह होना पसंद करेंगे ? मैं चाहूँ तो अभी-अभी राज्य पर अधिकार कर सकता हूँ, मगर पिता का और धर्म का न होने वाला राम क्या प्रजा का होगा ? और फिर ऐसे धर्मत्यागी अयोग्य पुरुष को आप राजा बनाना अच्छा समझेंगे ?

इसके अतिरिक्त भरत मेरा भाई है। वह आपका राजा हुआ है। उसमें राजा होने की सब योग्यताएं हैं। अगर वह योग्य न होता तो मैं माता के प्रस्ताव का घोर विरोध करता। आप नहीं जानते कि भरत कौन है ? भरत को जब आप भलीभांति पहचान जाएँगे तो उसके राजा होने पर आपको

उतनी ही प्रसन्नता होगी, जितनी मेरे राजा होने पर होती। मुझमें और भरत में कोई भेद नहीं है। प्रेम और भक्ति में जो संबंध है वही मुझमें और भरत में है। भरत और राम एक ही मूंग के दाने की दो फाड़ हैं। अगर आपको मुझ पर विश्वास है और आपने मुझे राजा चुना है तो आपको मेरी बात मानना चाहिए। मैं कहता हूँ—आपका राजा भरत है। आप भरत को ही अपना राजा समझें। अगर आप ऐसा नहीं करते तो मैं समझूँगा कि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा भाई भरत मेरी ही तरह प्रजा का पालन करेगा। इसीलिए आप उठें और रथ आगे बढ़ने दें। मुझे आशीर्वाद दें कि वन में मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर सकूँ। आप सब की सद्भावनाओं से वन के काँटे भी मेरे लिए फूल हो जाएंगे।'

राम ने प्रजा का आशीर्वाद मांगा है। अब विचारणीय यह है कि राम बड़े हैं या प्रजा बड़ी है? अगर प्रजा बड़ी न होती तो राम प्रजा का आशीर्वाद क्यों मांगते [illegible] वास्तव में [illegible] की शक्ति बड़ी [illegible] कर हो सकते हैं [illegible] इसीलिए [illegible] मांगा है।

[illegible] प्रयोजन [illegible] से [illegible] और [illegible] जीवन के [illegible]

आज्ञा से उनसे आशीर्वाद लिया जाता है।

राम ने प्रजाजनों से कहा—मित्रो! उठ खड़े होओ। धर्म के मार्ग में विघ्न मत डालो। मैं यह आशा रखता हूँ कि आपकी शुभ कामनाओं से वन के कांटे भी फूल बन जाएँ और आप स्वयं ही कांटे बन रहे हैं! यह उचित नहीं है। धर्म का मार्ग मत रोको।'

'आप कहते हैं-हम क्या करें? इस संबंध में मेरा यही कहना है कि अगर आप मुझसे प्रेम करते हैं तो धर्म से भी प्रेम करो। धर्म के मार्ग पर ही चलो। मैं पिता का ऋण चुकाने के लिए वन को जाता हूँ। पिता का ऋण आपके ऊपर भी है या नहीं? आप पर भी है और आप भी उसे उतारने का प्रयत्न करते रहो। पितृ-ऋण चुकाने में जो कठिनाइयाँ आवें उन्हें सहर्ष सहन करो। भोग-विलास का जीवन त्याग कर त्यागमयी प्रकृति बनाओ। तुच्छ स्वार्थों के लिए मार्ग के साथ मत लड़ो [illegible] पूर्ण शान्ति और सुख मिले, ऐसे उद्योग करो [illegible] आपने इतना किया [illegible] है।

[illegible] राम की इस [illegible]

है। फिर भी आप भोगों के कीड़े बने रहे और भोग-विलास की सामग्री के लिए परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे तो यही कहा जायगा कि आपने न राम को पहचाना है और न महावीर को ही जाना है। बहिनों से भी यही कहना है कि सीताजी ने जिन गहनों को हँस कर त्याग दिया था, उन गहनों के लिए तुम आपस में कभी मत लड़ो। जब आत्मा सद्‌गुणों से अलंकृत होता है तो शरीर को विभूषित करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। सीता और राम के प्रति आपके हृदय में इतनी श्रद्धा क्यों है? उन्होंने त्याग न किया होता तो जो गौरव उन्हें मिला है, वह कभी मिल सकता था? त्याग के बिना कोई किसी को नहीं पूछता।

प्रजाजनों पर राम के वक्तव्य का तत्काल प्रभाव पड़ा। लोग सोचने लगे—जब हम राम को चाहते हैं तो राम की बात हमें माननी ही चाहिए। अगर हम राम की तरह वीर नहीं बन सकते तो कम से कम कायर तो नहीं बनना चाहिए। राम धर्म के लिए वन जा रहे हैं [illegible] उनमें रोड़ा डालना उचित नहीं है।

इस प्रकार विचार कर लोग [illegible] किनारे [illegible] राम के [illegible] [illegible] [illegible] सोचकर कि राम का [illegible] ही देर में घर झरोखों से ओझल हो [illegible]

बेहद बढ़ गई। सब लोग मौन हो रहे। चिन्तित भाव से राम की ओर दृष्टि जमा कर लोग खड़े हो गए। [illegible] ने राम का नवीन रूप देखा। जिन राम का [illegible] होने वाला था, वह राम मानों इनसे अलग हैं।

राम ने विचार किया कि अब विलम्ब करना उचित नहीं है। थोड़ी-सी देर में ही प्रजा का मोह [illegible] तपे हुए लोहे पर चोट लगाने से चीज़ बन जाती है। [illegible] करने से वह ठंडा हो जाता है और चीज़ बनाने के लिए फिर उसे गर्म करना पड़ता है।

राम ने सारथी को रथ बढ़ाने की आज्ञा दी। रथ आगे बढ़ा और राम सब की शुभकामनाएं साथ लेकर वन की ओर रवाना हुए। अयोध्या से बाहर कुछ दूर जाकर राम ने रथ रुकवाया। सारथी से कहा—'अब हमें रथ की आवश्यकता नहीं है। हम पैदल ही वन में भ्रमण करेंगे। रथ हमारे लिए उपाधि है। अतएव तुम रथ को लौटा ले जाओ।'

इतना कह कर राम रथ से उतर पड़े। लक्ष्मण भी उतरे और फिर सीता उतरीं। सारथी और रथ के घोड़े आंसू बहाने लगे। उन्होंने सोचा होगा—हाय, यह निष्ठुर कार्य हमें ही करना पड़ा! हम राम को वन में भेजने के निमित्त बने! सारथी ने कहा—'दीनबन्धु! नहीं जानता किस पाप के उदय से मुझे यह [illegible] करना पड़ा है! आप को वन भेजने का निमित्त मैं भी हुआ। मैं लौटकर जाऊंगा

और लोग कहेंगे कि यह सारथी राम को वन में छोड़ आया है तो मैं उन्हें किस प्रकार मुँह दिखलाऊँगा?

राम ने सान्त्वना देते हुए कहा—चिन्ता मत करो सारथी. तुम्हें पाप नहीं धर्म का फल मिला है। मुझ पर कोई मिथ्या दोषारोपण किया गया होता और उसका दण्ड भोगने के लिए मुझे वनवास करना पड़ता और तुम मुझे छोड़ने आए होते तो चाहे दोष के भागी होते। मगर हम तो धर्म-कार्य के लिए वन में आये हैं। इसलिए तुम्हें दोष नहीं होगा, धर्म का फल मिलेगा।

लोग समझते हैं कि हमने रथ और घोड़ों पर अधिकार कर लिया है. मगर देखा जाय तो अधिकार करने वाला आदमी रथ आदि की परतन्त्रता स्वीकार करके स्वयं उनके अधिकार में चला जाता है। जब तक वह उन्हें पकड़े है, [illegible] कहीं जा नहीं सकता।

राम कहते हैं—सारथी! तुम रथ ले जाने [illegible] ने जाने पर तुम मुझे बन्धन से छुड़ाने वाले होंगे. [illegible] और शोक मत करो [illegible] घोड़े भी [illegible] [illegible] और [illegible] क्यों चिन्ता करते हो।

सारथी [illegible] [illegible]

सारथी को इस बात का संतोष है कि यहाँ तक रथ लाने के उपलक्ष्य में मुझे राम के कुछ उपदेश-वाक्य सुनने को मिल गए। यद्यपि राम के विरह से उसका हृदय जल रहा था, फिर भी राम के शांतिदायक वचन सुन कर उसे संतोष भी हुआ। सारथी अत्यन्त अनमने भाव से रथ लेकर नगर की ओर लौट पड़ा।

जैन रामायण में इस प्रसंग का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। उसमें यह भी लिखा है कि अनेक सामन्त और सरदार आदि अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी नहीं माने और राम के साथ साथ चले और बहुत दूर तक गये। आखिर राम ने उन्हें विदा दी। उन सामन्तों को राम के वन-गमन से इतना अधिक विषाद हुआ कि उन्हें संसार का वैभव तृण के समान तुच्छ प्रतीत होने लगा। राम के वियोग में उन्होंने खूब विलाप किया। अन्त में कई-एक सामन्तों ने विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

[illegible] में राम का चरित बड़ा विस्तृत है और वर्णन करने [illegible] इतना नहीं [illegible] लिखित [illegible] [illegible]

अवध को श्रद्धाञ्जलि।

सारथी के चले जाने पर राम ने अवध की ओर भावभरी दृष्टि डाली। फिर सीता और लक्ष्मण से कहा—इस सुहावने अवध को प्रणाम करो। मोती समुद्र में उत्पन्न होता है। वह चाहे कहीं जाय फिर भी कहलाता है समुद्र का ही। समुद्र का मोती समुद्र में ही रहे तो उसकी कीमत नहीं होती। बाहर निकलने पर ही उसकी कीमत कूती जाती है और उसकी बदौलत समुद्र की प्रशंसा होती है। समुद्र को 'रत्नाकर' की पदवी और बड़े मिली है! मैं इस अवध-समुद्र में उत्पन्न हुआ हूँ। कहीं भी जाऊँ, कहलाऊँगा अवध का ही। मगर अवध का गौरव बढ़ाने के लिए मुझे अवध से बाहर निकलना ही चाहिए। हे अवध, हम तेरे हैं और तेरे ही रहेंगे तथापि तेरा गौरव बढ़ाने के लिए तुझसे बिछुड़ते हैं।

राम कहते हैं—हे अवध! मोती की कीमत पानी से होती है। तू ने मोती की तरह मुझे उत्पन्न किया है और मुझे पानी दिया है। तू ने मुझे दया का पानी दिया है। इस पानी का बहुत महत्त्व है। तू ने दया का जो अंकुर मेरे अन्तःकरण में उत्पन्न किया है वह उन दीन हीन गरीब और मूक जीवों पर छाया करेगा। जो सताये जा रहे हैं—मारे जा रहे हैं वे मेरी दी हुई दया की छाया पाएँगे और उनकी रक्षा होगी

साथ ही जो लोग उन निरपराध प्राणियों का घात करते हैं उन्हें भी दया के उस अंकुर की शीतल छाया मिलेगी। वे हत्या के पाप से बच सकेंगे। इस प्रकार मरने वाले और मारने वाले —दोनों की रक्षा करने के लिए, तेरा यह पुत्र—राम रूपी मोती—दया का पानी लेकर बाहर निकल रहा है।'

'हे अवध! तू ने दया के पानी के साथ मुझे प्रेम का भी पानी दिया है। प्रेमहीन दया लँगड़ी होती है। वह एक ओर दया करती है और दूसरी ओर हत्या भी करती है। प्रेम के बिना दया का विकास नहीं होता। किसी दुर्बल और दीन भिखारी को रोटी का टुकड़ा दे देना दया है, मगर प्रेम के अभाव में यह विचार नहीं किया जाता कि यह इस स्थिति से किस प्रकार ऊपर उठ सकता है! जहाँ दया प्रेम के साथ होगी वहाँ रोटी का टुकड़ा दे देना ही बस नहीं समझा जायगा, वरन् उस दीन दुखिया के भविष्य का भी विचार किया जायगा। इस कारण प्रेमयुक्त दया ही परिपूर्ण होती है। प्रेमपूर्ण दया से युक्त माता अपने बालक के साथ जैसा सलूक करती है वैसा ही सलूक प्राणी मात्र के साथ करने वाला पुरुष सच्चा दयालु है। हे अवध! मैं ऐसी ही दया करने आ रहा हूँ जिससे प्राणी मात्र के हृदय में बस जाऊँ।'

राम कहते हैं—हे अवध! तुझ से तीसरा पानी मुझे न्याय का मिला है। प्रेम में अन्धा होकर मनुष्य कभी-कभी न्याय को भूल जाता है। जिस पर उसका प्रेम होता है

उसके लिए दूसरों के प्रति अन्याय भी कर बैठता है। लेकिन मैं प्रेम के साथ न्याय का भी विचार रक्खूँगा। मैं सारे जगत् को विशाल न्याय का सिद्धांत समझाना चाहता हूं। प्रेम होने पर भी मैं कभी अन्याय नहीं करूंगा।

न्याय करने की भावना जीवन-विकास का मूल मंत्र है। प्रिय से प्रिय जन चाहे छूटता हो, मगर न्याय नहीं छोड़ना चाहिए। आप भी राम की तरह संकल्प करो कि मैं कदापि अन्याय नहीं करूँगा।

राम कहते हैं—'जगत् में जो अन्याय फैल रहा है, उसे मिटा कर न्याय की प्रतिष्ठा करना और प्रचार करना मेरे प्रवास का हेतु होगा।'

'हे अवध ! न्याय के पानी के साथ विनय और नम्रता का भी पानी मुझे मिला है। संसार में आज जहाँ-नहाँ उद्दण्डता दिखाई दे रही है। लोग नम्रता और विनय को भूल रहे हैं। [illegible] नहीं करते। अतएव मैं विनय और नम्रता भी [illegible]।

राम विनीत न होते तो कैकेयी जैसी माता को प्रणाम करने न जाते। उनकी [illegible] उन्हें कैकेयी के चरणों में झुकाया था। [illegible] जो [illegible] बड़े हैं उनका विनय करना ही चाहिए।

गुरु जनों को वन्दन [illegible]
दुख देख [illegible]

बड़ों को वन्दना करना उचित है। उनसे बराबरी न[illegible]

की जाती कि वह मुझे वन्दना करे तो मैं उसे
जो जिसे श्रेष्ठ समझता है उसे उसका विनय
रण कर्त्तव्य है।

राम कहते हैं—हे भरत! तू ने मुझे विनय का पानी दिया है। उसका महत्व बताने के लिए मैं जा रहा हूँ। तू ने मुझे सदाचार का भी पानी दिया है। लोग कहते हैं, द्रव्य होने पर ही सदाचार का पालन हो सकता है, अन्यथा सदाचार भुला दिया जाता है। यह विचार भ्रमपूर्ण है, यह बात मैं अपने व्यवहार से सिद्ध करूँगा! मैं अकिंचन होकर जा रहा हूँ। सिर्फ सदाचार की सम्पदा मेरे पास है और वही मेरे लिए काफी भी है। कोई कितना ही क्यों न गिर गया हो, अगर उसका नैतिक पतन नहीं हुआ है तो वह एक न एक दिन उन्नत हो जायगा। इसके विपरीत, जिसमें सदाचार नहीं है वह चाहे चक्रवर्ती हो तो भी उसका पतन अवश्यम्भावी है। किसी भी मनुष्य का पतन होने से पहले उसके सदाचार का पतन होता है। सदाचार मनुष्य की अक्षय निधि है। अतएव सदाचार का महत्व बतलाने के लिए मैं कोई कसर नहीं रक्खूँगा।

हे भरत! सदाचार का महत्व बताने के साथ मैं लोगों को स्वास्थ्य का भी मार्ग बतलाऊँगा। आज स्वास्थ्यविहीन लोग दुःख से परतन्त्र होकर जीवन बिता रहे हैं। लेकिन मैं बतलाना चाहता हूँ कि वन में रहते हुए भी स्वास्थ्य किस

शरीर कायम रक्खा जा सकता है।

शरीर पांच भूतों का सम्मिश्रण कहलाता है। इसमें एक भूत वायु है। अगर श्वास न चले तो शरीर निर्जीव हो जाता है और श्वास-वायु है। शरीर में दूसरा तत्त्व जल है। शरीर में जितना रस भाग है वह सब जल तत्त्व है। तीसरा अग्नि तत्त्व है। शरीर में अग्नि न हो तो रोटी न पचे। चौथा तत्त्व या भूत पृथ्वी है। चमड़ी, हड्डी आदि जितना भी ठोस भाग है वह सब पृथ्वी तत्त्व है। पाँचवाँ भूत आकाश है। शरीर का पूरा ढांचा आकाश में ही है और इस ढांचे के भीतर भी आकाश है। इन पांच तत्त्वों के विषय में राम अवध को लक्ष्य करके कहते हैं:—

राम कहते हैं—हे अवध! मैं तुझे त्याग नहीं सकता। मैं त्यागूं भी तो किस प्रकार [illegible] मेरे शरीर में तेरे [illegible] समीर का श्वास है। मेरा स्वच्छ और पावन पवन [illegible] साथ है जो प्राण के रूप में मुझसे [illegible] जब तक श्वास लूंगा, यह स्मरण करता रहूंगा कि [illegible]

जब आप श्वास लेते हैं [illegible] स्मरण आता है या नहीं [illegible] अपने माता-पिता [illegible] राम कहते हैं कि मैं जब तक [illegible] कि यह श्वास अवध का [illegible] का पवन और श्वास तो अवध [illegible] वह [illegible]

के साथ कैसे जाएगा ? राम जहां जाएंगे, वहीं के पवन से श्वास लेंगे ! फिर वह श्वास अवध का कैसे रहा ? इसका उत्तर यह है कि वैज्ञानिकों के कथनानुसार बारह वर्ष में शरीर के सब पुद्गल बदल जाते हैं। इस कथन को सही मान लिया जाय तो आपके शरीर के परमाणु कई बार बदल गये हैं। फिर भी आपका शरीर क्या माता-पिता का दिया हुआ नहीं है ? परमाणु चाहे कितनी बार बदल जाएं मगर मूल पूँजी तो माता-पिता की दी हुई ही है। अतएव परमाणु बदल जाने पर भी यही कहा जायगा कि यह शरीर माता-पिता का दिया हुआ है। इसी प्रकार राम का कहना है कि मेरा मूल श्वास तो अवध का ही है। वहाँ मेरे शरीर में प्राण का संचार हुआ है। भूलने वाले तो माता की गोद में बैठे हुए भी माता को भूल सकते हैं परन्तु सपूत उसी को समझना चाहिए जो प्रत्येक श्वास में उसे याद रखता है।

यही बात परमात्मा के स्मरण के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। परमात्मा का प्रत्येक श्वास में स्मरण करना चाहिए।

आस मत कर तू ।
नर ! इसी नाम से तर जा,
भव—सागर तू ।
एक नाम साईं का जप,
हिरदे में धर तू ।
यहां अदल पड़ा इन्साफ,
जरा तो डर तू ।

इस प्रकार प्रत्येक श्वास में परमात्मा का स्मरण रहने पर ही समझा जा सकता है कि परमात्मा भुलाया नहीं गया है।

राम कहते हैं कि मैं अवध का श्वास नहीं भूलूंगा। इसका तात्पर्य यह है कि मुझे अवध से दया, प्रेम, सत्य, आदि जो सद्गुण मिले हैं, उन्हें नहीं भूलूंगा।

राम ने फिर कहा—हे अवध ! मेरा यह शरीर तेरे ही जल से बना है [illegible] अतएव अब लाख [illegible] जलने पर भी मैं तुझे नहीं भूल सकता हूँ [illegible] अवध का पवन है और [illegible] अग्नि से [illegible] मेरा श्वास [illegible] सकता हूँ [illegible] पर तेरे आकाश में [illegible] वह सदैव मेरे साथ रहेगा और [illegible] रहेगा तब तक मैं अवध को कैसे भूलूं

पर्वत की तरह अचल रही।

राम फिर कहने लगे–हे अवधभूमि ! मैं तेरी ही गोदी में पला हूँ, तेरी ही गोद में खेला हूँ, तेरी ही गोद में गिरा हूँ और उठकर चला हूँ, तेरा सहारा लेकर ही मैंने चलना-फिरना सीखा है। इसलिये तू मेरी है और मैं तेरा हूँ। तू सदा मेरे साथ ही रहेगी। मैं किसी भी दशा में तुझे भूल नहीं सकता। तूने मुझे जो साहस दिया है, उसी के बल पर मैं इस कठिन पथ पर चलने को उद्यत हुआ हूँ और लोभ-मोह मुझे छल नहीं सके हैं।

कमल के पत्ते को चाहे जितनी देर जल में रखा जाय, जब निकलेगा सूखा ही निकलेगा। कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता। उसमें यह गुण कहीं दूसरी जगह से नहीं, उसी जल से आया है। उस जल ने ही कमल में ऐसा गुण उत्पन्न कर दिया है। राम कहते हैं–मैं अवधभूमि में पला, खेला और बड़ा हुआ। इसी भूमि के प्रताप से मुझमें यह साहस हुआ कि मैं [illegible] त्याग हूँ–उसमें लिप्त न होऊँ।

राम कहते हैं कि [illegible] मैंने [illegible] के स्वभाव में मैं [illegible] [illegible] पूर्व दिशा है, पूर्व दिशा [illegible] [illegible] का की स्तुति करते हुए [illegible]

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ।

नक्षत्र और तारे तो सभी दिशाओं में उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु सूर्य को जन्म देने वाली एक मात्र पूर्व दिशा ही है।

राम कहते हैं हे अवध माता! दूसरों को जन्म देने वाली तो बहुत होंगी किन्तु हम सूर्य-सन्तानों को जन्म देने वाली तो तू ही है। तू हमारी अधिष्ठात्री है। हमारी देवी है। जो पूर्व में नहीं जन्मा है वह सूर्य होने का गौरव नहीं पा सकता। इसी प्रकार मैंने अयोध्या में जन्म न लिया होता तो मेरा भी गौरव न बढ़ता। सूर्य पूर्व दिशा में उत्पन्न हो करके पूर्व दिशा में ही नहीं बैठा रहता, वह दूसरी दिशा में जाता है। इसी प्रकार मैं भी जंगल जा रहा हूँ। इसी में मेरा गौरव है। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँगा, तेरी कीर्ति बढ़ाऊँगा।

[illegible]

[illegible]

किसी व्यवहार से इनकी बदनामी न हो। बहुत से लोग अविवेक के कारण ही देश और धर्म को बदनाम करते हैं। श्रेष्ठ होने का आधार विवेक है। अतएव विवेक प्राप्त करो। विवेक से आपकी भी उन्नति होगी और देश की भी कीर्ति बढ़ेगी।

राम कहते हैं—हे हृदय! तूने मुझे मनुष्यत्व की मर्यादा दी है। तू मनुष्यता की धात्री है। तुझसे मिली मर्यादा को मैं संसार के सामने रखना चाहता हूँ और बता देना चाहता हूँ कि हृदय से मुझे ऐसी मर्यादा मिली है। तुझसे सीखे हुए मनुष्यत्व का आदर्श उपस्थित करके मैं संसार से [illegible] महत्ता मनाना चाहता हूँ।

हे हृदय! तू एक प्रकार की चित्रशाला है। तेरे भीतर अनेक चित्रकार अपने भावों के चित्र बना गए हैं। जिस चित्रशाला में कलापूर्ण सुन्दर चित्र होते हैं उसमें और लोग भी चित्र बनाने की इच्छा रखते हैं। [illegible] हमारे पूर्वजों ने अपने भावों के जो चित्र बना दिए हैं उनमें [illegible] ने भी एक [illegible] चित्र अंकित [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चित्र बनाने का प्रयत्न [illegible]

[illegible] हृदय! तू [illegible] [illegible] वरन् एक

भी लगता है। लेकिन उसके रोने को माँ-बाप उसी तरह नहीं सुनते जैसे भारतीयों के रोने को अंग्रेज नहीं सुनते। लोग अपने मनोरंजन के लिए या अपना बड़प्पन दिखाने के लिए बच्चे को कपड़ों में जकड़ देते हैं और इतने से संतुष्ट न होकर हाथों-पैरों में गहनों की बेड़ियाँ भी डाल देते हैं। पैरों में बूट पहना देते हैं। इस प्रकार जैसे उगते हुए अंकुर को ढक कर उसका सत्यानाश किया जाता है उसी प्रकार बालक के शरीर को ढक कर अकड़ कर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रियाँ बालक के लिए गहने न मिलने पर रोने लगती हैं, जब कि उन्हें अपना और अपने बालक का सौभाग्य समझना चाहिए।

राम कहते हैं—'हे अवध! तू मेरा पालना है। मैं तुझे भूल नहीं सकता। लोग मुझे कितना ही बड़ा समझें, तेरे आगे तो मैं बालक ही रहूँगा।

राम की तरह आप भी अपनी मातृभूमि का आदर करते हैं या नहीं? यदि आपने अपनी जन्मभूमि का आदर किया, उसे कभी विस्मृत न किया तो आप ही आनन्द में रहेंगे। अगर आप इसे भूल गए तो आपकी [illegible] आपको किसी काम का नहीं रहने [illegible]

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

[illegible]

गुह की अद्भुत भक्ति

———:::():::———

यहाँ एक ऐसी घटना का उल्लेख किया जाता
जिसका उल्लेख जैन रामायण में नहीं है। किन्तु जिसमें किसी
ी बात से उपदेश मिलता हो, वह चाहे जहाँ हो, ग्रहण करने
ग्य है। सत्पुरुषों की प्रत्येक बात को ग्रहण करना स्याद्वाद
की विशालता है। जहाँ मूलभूत सिद्धान्त में बाधा उपस्थित
होती हो और किसी घटना के वर्णन का अभिप्राय सिर्फ
त्शिक्षा देना हो, ऐसी घटना का वर्णन पढ़ना सुनना कोई
राई की बात नहीं है। किसी भी कथा में घटना मुख्य वस्तु
हीं होती वरन घटना से फलित होने वाला कथानायक
ा अन्य पात्र का चरित्र ही मुख्य होता है। उस चरित्र का
ोध कराने के लिए ही घटनाओं की सर्जना की जाती है।
हा जिस घटना [illegible] जैन रामायण
नहीं है [illegible] बहुत शिक्षाप्रद
[illegible] है

[illegible]
[illegible]

सुना कि राम वन में आये हैं। उसने सोचा—हम वन-वासियों के सौभाग्य से ही राम वन में आये हैं। वे अवध में ही रहते तो उनके दर्शन भी दुर्लभ थे। वन में आने पर उनसे मिलना सरल होगा। उनसे भेंट करने का यह अच्छा अवसर है।

गुह राम की खोज में निकला और वहीं पहुंचा जहां सीता-सहित राम लक्ष्मण जा रहे थे। राम पर दृष्टि पड़ी तो वह सोचने लगा—आज राम हमारे जैसे ही हो गये हैं! अगर इनके मस्तक पर मुकुट और कानों में कुंडल होते तो इनसे मिलने में बड़ी झिझक होती। मगर अब राम हमारे ही समान हैं। इस प्रकार विचार कर उसका रोम-रोम हर्षित हो गया। उसने अपने साथियों से कहा—जाओ, जल्दी फल-फूल ले आओ। राम को भेंट देकर उनकी सेवा करें।'

अमीरों की अपेक्षा गरीबों में अधिक स्नेह-भाव पाया जाता है। निषाद के साथी दौड़ कर फल-फूल ले आये। निषाद फल-फूल लेकर राम के सामने पहुंचा। भेंट धरी। फिर प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया। कहने लगा—आज का दिन और यह घड़ी बड़ी धन्य है कि मुझ जैसे जङ्गली को आपके दर्शन का सौभाग्य मिला।

महापुरुष दीन की नम्रता देख कर पानी-पानी हो जाते हैं। राम ने गुह का भक्तिभाव देखा तो गद्गद हो गए। गुह को गले से लगा कर प्रेम के साथ मिले। राम का यह स्नेह

मोतियों का थाल भर कर आपके सामने रक्खा जाय तो आपको रुचिकर होगा ? आपको प्यास लगी हो और कोई पानी के बदले गुलाब का इत्र भेंट करे तो आप क्या कहेंगे ? इससे आपका काम चल जाएगा ? नहीं। भूख प्यास के अवसर पर जंगली फल-फूल और दोना भरा पानी आप जितना पसंद करेंगे, उतनी कोई दूसरी कीमती चीज़ नहीं। फिर भी लोग असली चीज़ को भूल जाते हैं और नकली के पीछे पड़ते हैं।

सांसारिक विषमता ने मनुष्य के विवेक को धुंधला बना दिया है। यही कारण है, जिससे लोग भाव को भूल गए हैं और वस्तु की कीमत के फेर में पड़ रहे हैं। चन्दनबाला द्वारा भगवान् महावीर को दिये हुए उड़द के बाकले क्या कीमती थे ? फिर इन्द्र आदि देवों ने भी क्यों धन्य-धन्य कहकर उस दान की सराहना की थी ? उस दान में भावना की ही कीमत थी। भावना के मूल्य से वह दान मूल्यवान् बन गया था। चन्दनबाला तेले की तपस्या में थी। हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी पहनी थी, कछोटा लगाया हुआ था। सिर मुंडन किया हुआ था। [illegible] उड़द के बाकलों का दान दिया गया था। उस दान के साथ चन्दनबाला की [illegible] धर्मप्रीति थी। इसी प्रीति के [illegible] उन उड़द के बाकलों की कीमत इन्द्र भी नहीं चुका सकता [illegible]

राम अयोध्या के राजा होने [illegible] उन्हें कैकेयी ने [illegible]

थक गये होंगे। इसलिए आप भी सो जाइए। मैं जाग कर रक्षा करूंगा। हाँ, अगर मेरे ऊपर भरोसा न हो और मुझे बेईमान समझते हों तो बात अलग। पर यक़ीन रखिए, मैं धोखेबाज़ नहीं हूँ।'

लक्ष्मण ने सोचा-'गुह बड़ा सेवापरायण और भक्त है। अधिक आग्रह करने से इसके चित्त को क्लेश पहुँचेगा। वह बोले-मित्र! तुम्हारे ऊपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि सवेरा होते ही राम तुम्हें विदा कर देंगे-साथ नहीं रक्खेंगे! ऐसी दशा में हम लोग बातचीत कब करेंगे? तुम से वन्य जीवन के संबंध में बहुत-सी बातें सीखनी हैं। इस नवीन जीवन के लिए तैयारी किये बिना कैसे काम चलेगा?'

आलसी आदमियों ने संसार को बिगाड़ दिया है। नागश्री ब्राह्मणी ने मुनि को कडुवा तूंबा-जिसके खाने से उनकी मृत्यु हो गई थी-आलस्य के कारण ही बहरा दिया था। उसने सोचा था-कौन बाहर फेंकने जाय? इस आलस्य के मारे उसने घोर अनर्थ कर डाला। लक्ष्मण आलसी होते तो गुह की बात मानकर सो जाते। पर आलस्य तो उनके पास ही नहीं फटकता था। इस प्रकार गुह भी प्रसन्न हो गया और लक्ष्मण की जागरूकता भी कायम रह गई।

रात हुई। शीतल मंद पवन चलने लगा। चाँदनी छिटक गई। राम और सीता पत्तों के बिछौनों पर सो गये। राम को

इस प्रकार सोते देखकर गुह सोचने लगा—राम जब राज-महल में सोते होंगे तो कितनी सुन्दर सेज और कितना बढ़िया पलंग बिछाया जाता होगा ! आज वही राम पत्तों के बिछौने पर पेड़ के नीचे पड़े हैं ! राम संसार की विचित्रता के मूर्तिमान् उदाहरण हैं। राज्याभिषेक हो गया होता तो वे किस स्थिति में होते और अब किस स्थिति में हैं ? और यह माता सीता ! जनक राजा की पुत्री और दशरथ की पुत्रवधू हैं। अनेक दासियाँ इनकी सेवा में हाजिर रहती थीं। कितने सुखों में पली हैं और रही हैं। हाय ! आज इन्हें भी पर्ण-शय्या पर, हाथ का तकिया लगाकर सोना पड़ा है। संसार की दशा बड़ी ही विचित्र है !

इस प्रकार विचार करते-करते गुह को रोना आ गया। गुह का रोना भीतर ही न रुक सका। बाहर रोने की आवाज निकल पड़ी। गुह का रोना सुनकर लक्ष्मण पशोपेश में पड़ गए। अचानक गुह क्यों रोने लगा ! उन्होंने पूछा—'सखे ! [illegible] क्या ? तुम अभी-अभी रोने क्यों लगे ? [illegible] होकर रोना कैसा ? सेवक को रोने का अधिकार नहीं है [illegible] [illegible]

गुह ने रोना रोककर [illegible]
[illegible]
[illegible] है मुझे [illegible]
और सीता [illegible]

विकट है ! मेरे झोंपड़े में भी इससे अच्छी तैयारी है। मेरे झोंपड़े में भी एक टूटी-सी खटिया है। मगर राजमहल में रहने वाले राजकुमार और राजकुमारी के लिए आज यह भी नसीब नहीं है। कैसी विचित्रता है !

गुह की बात सुन कर लक्ष्मण ने कहा—'मित्र ! तुम वृथा रोते हो। तुमने अकारण ही दुख पैदा कर लिया है। पड़ता है, मोह ने तुम्हें घेर लिया है। आखिर राम और सीता के लिए ही दुःख मना रहे हो न ? मगर उन्हें तो दुःख नहीं है। जिस दुख से तुम रो रहे हो वह दुख नहीं रुलाता ? यह समझने की बात है। रोना अज्ञान का फल है। राम के सत्संग में आकर तुम्हें अपना अज्ञान छोड़ना चाहिए। अज्ञान हटने पर दुख-सुख सरीखे जान पड़ते हैं। जिसे तुम दुख मानते हो, राम उसे दुख नहीं मानते। अगर वास्तव में वह दुख ही होता तो राम भी उससे दुखी होते। आग गर्म है तो वह सभी के लिए गर्म है। किसी को गर्म और किसी को ठंडी नहीं लगती। इसी प्रकार वनवास अगर दुख होता तो राम भी उससे दुखी होते। मित्र ! तुम वनवासी होकर भी वनवास को कष्ट समझते हो ?

राम ने स्वेच्छापूर्वक यह स्थिति स्वीकार की है। किसी ने उन्हें अयोध्या से निर्वासित नहीं किया है। वे इस दशा में संतुष्ट और सुखी हैं। इस सुख के लिए उन्होंने राजपाट भी निछावर कर दिया है। हां, राजपाट इस सुख पर निछावर

हो हुआ है। उसकी कीमत नहीं चुकाई जा सकती। राम की सेवा में यह सुख बहुत सस्ता मिला है।'

लक्ष्मण की बात सुनकर गुह चकित रह गया। उसने कहा—आप कुछ ठीक कहते हैं आप, मगर जी नहीं मानता।

लक्ष्मण—'हे गुह! तुमने थोड़ी देर पहले कहा था कि आप लोगों को पावन करने आये हैं। यह बात इतनी जल्दी कैसे भूल गए? वास्तव में तुम मोह में पड़ गए हो। इसीलिए रोते हो। मोह त्यागो। राम के वनवास का रहस्य समझो। राम अयोध्या में रहते तो संसार के सब प्राणियों के हृदय में नहीं बस सकते। उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। इसी कारण वे सब के हृदय में बसने योग्य बन गये हैं।'

राम ने धर्म के लिए राज्य त्याग दिया, लेकिन आप में कोई ऐसा तो नहीं है जो पेट-भर खाने के लिए धर्म छोड़ देता हो? झूठ बोलना भी धर्म छोड़ना है। अगर कोई झूठ बोलता है तो उसे सोचना चाहिए कि क्या वे झूठ बोलना साथ जायेंगे? जब काया ही न रहेगी तो माया क्या काम आयेगी? अतएव राम की बात हृदय में लेकर धर्म के लिए कुछ त्याग करो। त्याग बिना धर्म नहीं होता।

मित्रो [illegible] सुनो। [illegible]

तो जाति डूब जाती है। मैं और आप एक ही जाति के हैं। फिर मैं आपसे मजूरी कैसे लूँ ?

गुह की बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा—गुह ! तुम भक्ति के वश होकर ऐसा कह रहे हो। फिर भी यह अंगूठी लेने में कोई हर्ज नहीं। इसे ले लो।

गुह—'नहीं, मैं भक्ति के वश ऐसा नहीं कहता। मेरा कहना वास्तव में ही सत्य है। मेरा काम पार करना है और आप का काम भी पार करना है। मैं नदी में डूबते को पार करता हूँ और आप संसार के समुद्र में डूबने वाले को पार करते हैं। पार करना दोनों का ही समान कार्य है। इस नाते आप मेरे सजातीय हैं। सजातीय से मजदूरी ले लेने में जाति चली जाती है। मैं अपनी जाति नहीं खोना चाहता। हाँ, आपको बदला ही देना हो तो किसी दिन, जब मैं संसार की मोह-ममता में डूबने लगूँ तब मुझे उबार लेना। अंगूठी दे देने से आपको छुटकारा नहीं मिलेगा। एक अंगूठी के लिए मैं अपना महान कार्य कैसे बिगाड़ दूँगा ? आप मुझपर यह कृपा न करें। अंगूठी देकर मुझे धक्के न मारें। अंगूठी देने का अर्थ अपने आपको बचा लेना है—अपने को अलग कर लेना है। मैं यह नहीं चाहता। आप अपने हाथ से राम के चरण की रज दे दें तो उसे मैं अवश्य स्वीकार कर लूँगा। उसका आशय यह होगा कि राम ने जो महान त्याग किया है, उसकी धूल के बराबर मैं भी त्याग [illegible]। यानी

जिसके आचरण को मैं भी थोड़ा-सा जानता नहीं।

संसार में सर्वत्र स्वार्थ का साम्राज्य है। मनुष्य एक हाथ से कुछ देता भी है तो दूसरे हाथ से उसके बदले सौगुना लेने की इच्छा रखता है। निष्काम त्याग करने वाले पुण्यशील विरले ही होते हैं। गुह ऐसा ही निःस्वार्थ पुरुष है। इसकी कथा उन रामायण में न होने पर भी उपदेशप्रद है। त्याग का सुन्दर आदर्श इसमें बतलाया गया है।

भील कन्या की कथा।

——::::()::::——

गुह की कथा के अतिरिक्त एक कथा और भी है जो इस रामायण में नहीं है मगर शिक्षाप्रद है। अतएव उस पर भी विचार कर लेना उचित है।

एक भील-कन्या थी। वह अपने माँ बाप के घर रहती थी। वह जब जङ्गल में घूमती तो प्रकृति की शोभा देख कर विचार करती—यह वृक्ष और यह पहाड़ तो मुझे कुछ निराला ही पाठ सिखाते हैं! प्रकृति की रचना पर विचार करते-करते उसके दिल में दयाभाव उत्पन्न हुआ। वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। धीरे धीरे उसे ईश्वर के नाम की भी धुन लग गई। जिसके दिल में दया आती है उसे परमात्मा के प्रति प्रीति भी [illegible] किसी न किसी प्रकार से [illegible] प्रकाशन में बड़ा [illegible]

[illegible]

[illegible]

इस [illegible] का नाम [illegible] [illegible] किसमता है

और डाकू हमाई से बचने के लिए उसका नाम लेता है। दोनों का प्रयोजन कितना भिन्न है? दया के साथ परमात्मा को जपना और दान है तथा लोभ-लालच से जपना और रटना है।

शबरी में दया थी इसलिए उसे परमात्मा के नाम की लौ लग गई। और उसकी परमात्मप्रीति बढ़ती गई। यह सब दया का ही प्रताप था।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घट में प्राण।

अगर घट में दया है तो जो भी कार्य किया जायगा, अच्छा ही होगा। दया के अभाव में धर्म की जड़ ही कट जाती है।

पांच और पांच दस होते हैं। कोई गणित का प्रोफेसर किसी से कहने लगे—तुम मूर्ख हो कि पाँच और पाँच दस मानते हो। हम पढ़े-लिखे विद्वान हैं। हम कहते हैं—ग्यारह होते हैं। ऐसा कहने वाले प्रोफेसर से आप यही कहेंगे कि हम बिना पढ़े-लिखे ही भले जो पांच और पाँच के योग को ग्यारह तो नहीं कहते। ज्ञानी कहते हैं कि दया का धर्म भी पाँच और पाँच दस की तरह सरल है। उसे सभी सहज ही समझ सकते हैं। वह सब के अनुभव की चीज़ है। कोई न्यायशास्त्र और व्याकरण का पण्डित आकर आप से कहने लगे कि धर्म अहिंसामय नहीं, हिंसामय है तो

उसे मान लेंगे ? नहीं, आप यही कहेंगे कि तुम पंडित हो करके भी असत्य कहते हो। भारत का भाग्य अच्छा है कि यहाँ सब लोग अहिंसा को ही धर्म मानते हैं। किन्तु स्वार्थी लोग भुलावे में डालने की कोशिश करते हैं। अगर कोई भुलावे में डालने की कोशिश करे तो आप यही कहिए कि तुम झूठ कहते हो। धर्म तो अहिंसा में ही है।

दया धर्म के प्रताप से शबरी का ईश्वरप्रेम बढ़ता गया। वह बड़ी हुई। माँ-बाप ने उसका विवाह करना निश्चित किया। शबरी मन में सोचने लगी—माँ-बाप मेरा विवाह किसके साथ करना चाहते हैं ? जिसके साथ विवाह होना था, उसके साथ मैं हृदय से विवाहित हो चुकी हूँ। लेकिन मेरी बात वे मानेंगे कैसे ? इस प्रकार के विचार से वह शबरी कन्या चिन्ता में पड़ गई। उसने परमात्मा से प्रार्थना की—प्रभो ! मेरी लाज रखलो।

मीरां ने भी ईश्वर को अपना पति बनाया था। उसने कहा था—

संसारी नो सुख काचो,
परणीने रंडावू पाछो।
तेने घेर शिद जइए,
रे मोहन प्यारा, मुखड़ा नी प्रीति लागी रे ॥
परणु तो प्रीतम प्यारा,
अखंड सौभाग्य म्हारु।

[illegible] रखो,

रे मोहन प्यारा ।।

कुबजा की प्रीति [illegible] रे ।। मोहन० ।।

शबरी भी सोचती थी—क्या कोई ऐसा पति मिल सकता है जो मुझे कभी रांड न बनावे ? पहले सुहागिन बनूं और फिर रांड होऊं, यह ठीक नहीं है । मैं विवाह करूंगी तो ऐसे के साथ करूंगी कि अहिवात अखण्ड रहे ।

शबरी के पिता ने उसकी सगाई कर दी । फिर भी शबरी घबराई नहीं । वह सोचती थी कि मेरे हृदय में भगवान् है तो सब ठीक ही होगा । अगर पिता ने ब्याह भी दिया तो भी क्या है ? मेरे हृदय में तो परमात्मा बस रहा है । मैं उसी की हूँ ।

विवाह का समय आया । बरात आ पहुँची । शबरी-कन्या के पिता ने बरातियों को जिमाने के लिए मुर्गा तीतर आदि पक्षी इकट्ठे कर रक्खे थे । उन सब को एक पींजरे में डाल रक्खा था ।

रात का समय था । शबरी सोई हुई थी । किसी कारण से सब पक्षी [illegible] करने लगे । प्रकृति न मालूम किस तरीके से क्या काम करती है ? शबरी की नींद खुल गई । पक्षियों का कोलाहल सुन कर शबरी सोचने लगी—पक्षी क्यों चिल्ला रहे हैं ? यह क्या कहते हैं ? अनायास उसे ध्यान आया—पक्षी शायद कह रहे हैं कि तू ब्याह करती है और हम मारे

आएँगे ! शबरी उठी और उसने पींजरा खोल दिया। पक्षी अब स्वतन्त्र थे। अपनी जान लेकर भागे।

इधर शबरी ने सोचा—मेरे विवाह करने से पहले इतने जीव बंधन में पड़ेंगे। अगर विवाह कर लूँगी तो न जाने कितने बन्धन में पड़ेंगे ! मैंने इन्हें स्वतन्त्र कर दिया है। मेरे ऊपर जो बीतेगी, भुगत लूँगी। पर इन्हें स्वतन्त्र करने वाली स्वयं बन्धन में क्यों पड़ूँ ?

इस प्रकार विचार कर शबरी-कन्या रात्रि में ही घर से निकल पड़ी। वह सोचने लगी—लेकिन मैं जाऊँगी कहाँ ? जहाँ जाऊँगी वहीं से पिता पकड़ लाएँगे। मगर—

> समझ सोच रे मित्र ! सयाने,
> गाफिल हो फिर सोना क्या है !
> जिन नैनिन में निंद्रा गहरी,
> तकिया और बिछौना क्या है !
> रूखा-सूखा राम का टुकड़ा,
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

[illegible]

पक्षियों को खोल देने की भावना तुझ में कहाँ से आई ? [illegible] चलना चाहिए।

> कहत कबीर सुनो भाई साधो,
> छोड़ दिया फिर रोना क्या रे !

गिरा दिया है तब सोच कैसा ? चल, निकल चल। रात है, अँधेरा है, यही भाग निकलने का उपयुक्त अवसर है। शबरी निकल चली। उसने निश्चय किया—इन पक्षियों की रक्षा हुई तो मेरी भी रक्षा होगी।

सवेरा हुआ। घर के लोग जागे। देखा, पींजरा खाली पड़ा है। सोचा—हाय, अनर्थ हो गया ! किस पापी ने यह [illegible] कर डाला ! अब मेहमानों का सत्कार कैसे होगा ? ऐन वक्त पर सारी बात बिगड़ गई !

जब किसी के स्वार्थ में बाधा पड़ती है तो वह दूसरों को पापी कहने लगता है। पाप-पुण्य की कसौटी उसका स्वार्थ ही होता है।

थोड़ी देर बाद पता चला कि शबरी भी गायब है। [illegible]

नहीं फटकने देंगे। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए ऋषि कुछ भी करें, मुझे सत्संग करना ही है। वह भले मुझे न छूने दें, मैं उनकी सेवा दूर से ही करूँगी। यह विचार कर वह सेवा करने के उद्देश्य से ऋषियों के पास गई। मगर उन्होंने पापिनी कह कर उसे दुत्कार दिया। ऐसे समय क्रोध आना स्वाभाविक था, मगर सच्चा भक्त कभी क्रोध न करता। वह शान्त रही।

मन मस्त भयो फिर क्यों बोले,
हीरा पायो गांठ गँठियायो,
बार-बार वाको क्यों खोले ?
ओछी थी जब चढ़ी तराजू,
पूरी हुई तब क्यों तोले ?
हंसा पाया मान सरोवर,
डाबर-डाबर क्यों डोले ?
तेरा साहिब है घट में,
बाहर नयना क्यों खोले ?
मन ... बोले ॥

शबरी सोचने लगी — यदि मेरी समीपता से ऋषियों का धर्म जाता है तो मैं दूर ही रहूँगी। मैं क्यों उनका धर्म बिगाड़ूँ? मुझे भक्ति करने की इच्छा है, वह तो दूर से भी हो सकती है? वह पिछली रात में उठती और उठ कर जिस रास्ते से ऋषि आते-जाते थे उसे साफ कर देती थी। वह सोचती यही

इसी मांगे हैं कि उन्हें काँटे न लगें।

ऋषियों ने पहले दिन सवेरे उठ कर देखा कि मार्ग एकदम साफ है। किसी ने झाड़-बुहार दिया है। तब वे आपस में कहने लगे—यह हमारी तपस्या का प्रताप है। हमारी तपस्या के प्रताप से देव आकर मार्ग साफ़ कर गये हैं। इस प्रकार सभी ऋषि अपनी-अपनी तपस्या का फल बतला कर आपस में वाद-विवाद करने लगे। शबरी यह जानकर हँसी। उसने सोचा—चलो ठीक है। मुझे देव की पदवी मिली! जब ऋषि लोग आपस में विवाद करने लगे तो एक वृद्ध ऋषि ने कहा—हम कल निर्णय कर लेंगे कि किसके तप के प्रताप से कौन देव आकर मार्ग साफ़ करता है। अभी आप लोग अपना-अपना काम कीजिए।

दूसरे दिन शबरी फिर मार्ग साफ़ करने लगी। शृंगी ऋषि रखवाली कर रहे थे। उन्होंने दूसरे ऋषियों से कहा—देख लो, यह देवता मार्ग साफ़ कर रही है। आप सब इसे प्रणाम कीजिए। यह हम लोगों से भी ऊंची है।

शृंगी ऋषि की बात सुनकर बहुत-से ऋषि कुपित हो गए। कहाँ यह शबरी और कहाँ हम ऋषि! इनसे कहते हैं—शबरी को प्रणाम करो। यह भी कहते नहीं कि उसने मार्ग अपवित्र कर दिया, उलटी उसकी प्रशंसा करते हैं। शृंगी प्रायश्चित्त करें, क्योंकि इन्होंने अनर्थ कर दिया

श्रृंगी ऋषि ने शांतिपूर्वक कहा—तुम झूठे तपस्वी हो। सच्ची तपस्विनी तो यही है।

ऋषिगण—ऋषियों की निन्दा करने वाला हमारे आश्रम में नहीं रह सकता। तुम आश्रम से बाहर निकल जाओ।

श्रृंगी—मिथ्या अभिमान रखने वालों के साथ रहने से कोई लाभ भी नहीं है। लो, मैं जाता हूँ।

श्रृंगी ऋषि आश्रम से बाहर निकल पड़े। उन्होंने शबरी से कहा—माता, आओ। अगर तुम मुझे अपना पिता समझती हो तो तुम मेरी पुत्री हो।

दोनों कुटी बना कर रहने लगे। श्रृंगी ऋषि शबरी को ज्ञान सुनाने लगे। शबरी कहती—पिता न मालूम किसके साथ मेरा विवाह कर रहे हैं। अब आपकी दया से ज्ञान के साथ मेरा विवाह हो गया।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। ऋषि का अंतिम समय आ गया। शबरी ने कहा—अब कौन मुझे ज्ञान देगा!

ऋषि ने धीमे स्वर में कहा—अब तुझे ज्ञान सुनाने की आवश्यकता नहीं। दशरथपुत्र राम वन में आवेंगे और तेरे अतिथि बनेंगे। इस तरह तेरा कल्याण होगा।

ऋषि का देहान्त हो गया। शबरी को पूरा विश्वास था कि ऋषि की अंतिम बात अवश्य सत्य होगी। वह सोचने लगी—राम मेरे अतिथि होंगे तो मैं उनका क्या सत्कार करूँगी? यहाँ बेर के सिवाय और क्या है? बेरों से ही राम

की कथा सुन रहे हैं। यह उदाहरण अपनी सद्‌बुद्धि जगाने के लिए है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन नीच कहलाने वालों में भी कैसी उज्ज्वल भावनाएँ भरी रहती। हैं भील-भीलनी में प्रायः दया नहीं होती। उन्हें मार-काट की शिक्षा मिलती है। लेकिन इस भीलनी में कैसी दया थी कि उसने पक्षियों को स्वतंत्र कर दिया और बरात आ जाने पर भी विवाह न करके घर से बाहर निकल आई! जब एक भीलनी भी इतना त्याग कर सकती है तो आपको कितना त्याग करना चाहिए? अपनी आत्मा से पूछो'–हे आत्मन्! तू क्या कर रही है?' उस भीलनी ने विवाह करना त्याग दिया तो तुम क्या लड़की के बदले में पैसा लेना भी नहीं त्याग सकते? भारतवर्ष का करोड़ों रुपया सिर्फ तमाखू के बदले बाहर चला जाता है। भारत को उससे क्या लाभ होता है? करोड़ों का धुआँ उड़ जाता है। बदले में बीमारियाँ मिलती हैं। मुँह से दुर्गंध निकलती है। तमाखू में निकोटाइन नामक विष होता है। डाक्टरों के कथनानुसार अगर बीड़ी में से तमाखू निकाल कर उसका सत्व निकाला जाय तो उस सत्व के विष से सात मेंढक मर सकते हैं। सभी विलासी तमाखू का भी सेवन करते जाते हैं मनुष्य दुर्व्यसनों के कारण तमाखू खाने में असमर्थ बना हुआ है इस भीलनी के साथ इस पतन भयानक का मुकाबिला करने के लिए फिर इस बात पड़ता कि भीलनी ऊँची है या यह ऊँचा है।

हर्ष होता है, उसी तरह राम के मिलने पर शबरी को हर्ष हुआ। वह भक्ति से विह्वल होकर राम के पैरों में गिर पड़ी।

राम ने कहा—'शबरी, मेरा हृदय मुझ से पहले ही मिल चुका है। अब कुछ बिछाने को ला तो बैठें।'

शबरी के पास बिछाने को क्या था? उसने कुश की एक चटाई बना रक्खी थी। वह उठा लाई और बिछा दी। राम उस पर बैठ गए। वह लक्ष्मण से कहने लगे—'लक्ष्मण! यह कुशासन कितना नम्र है? हम लोग उत्तम से उत्तम बिछौनों पर सोये हैं मगर जो आनन्द इसमें है वह उनमें कहां!'

लक्ष्मण—इस चटाई के आनन्द के आगे मैं तो अवध का आनन्द भी भूल गया हूं।

सीता—जिसके लिये [illegible] से आपने और देवर ने इतना आनन्द माना [illegible] भी बड़ा है [illegible]

[illegible]

कहने लगे—बड़े मीठे बेर हैं शबरी। तबीयत प्रसन्न हो गई। बड़ा आनन्द हुआ।

शबरी के बेरों में क्या विशेषता थी? औरों ने राम को मीठा खिलाया होगा और स्वयं भी मीठा खाया होगा। लेकिन शबरी ने खट्टे बेर खाये और राम के लिए मीठे रक्खे। इसके सिवाय शबरी का प्रेम निस्वार्थ था। किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर उसने राम का सत्कार नहीं किया था।

चन्दनबाला के उड़द के बाकले भी ऐसे ही थे। भगवान् महावीर पाँच महीना और पच्चीस दिन से उपवासी थे। फिर भी उन्होंने बाकलों में आनन्द माना। देवों ने उस दान की सराहना की थी।

लक्ष्मण कहने लगे—आपने बेरों की प्रशंसा कह बताई, लेकिन मैं तो इनकी तारीफ ही नहीं कर सकता! इतना कह कर लक्ष्मण ने शबरी से कहा—माता, और बेर ले आ। सीताजी ने भी बेर खाये उन्हें भी मालूम हुआ, जैसे भीलनी ने बेरों में अमृत भर दिया है।

राम ने कहा—सीता! तुमने उत्तमोत्तम भोजन कराये हैं, मगर पति पत्नी के सम्बन्ध से। शबरी ने किस सम्बन्ध से बेर खिलाए हैं?

जानत प्रीति रीति रघुराई
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई,
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे भई सब जहँ पहुनाई।

तब तहँ कहि शबरी के फलन की रुचिमाधुरी बरनई।
जानत .... रघुराई।

राम की पहुँनाई कहाँ न हुई होगी ? आज राम नहीं हैं फिर भी उनकी पहुँनाई के नाम पर लाखों खर्च हो जाते हैं तो उस समय कैसी न हुई होगी ? मगर जब और जहाँ उनकी पहुँनाई हुई तब वहाँ उन्होंने शबरी के फलों की ही सराहना की।

आज लोग राम को रिझाने के लिए चतुराई से काम लेते हैं। वे सरलता का त्याग कर देते हैं। किन्तु—

चतुराई रीझै नहीं,
महाविचक्षण राम।

राम हृदय की सरलता पर रीझने थे। कपट उन्हें रिझा नहीं सकता था।

ऋषि आलोचना करने लगे—शृंगी ऋषि भूला ही था, राम भी भूल गये ! कलियुग आ रहा है न ? राम को ऋषियों का आश्रम प्यारा नहीं लगा और भीलनी की कुटिया अच्छी लगी। खैर राम गये तो जाने दो। चलो, हम लोग स्नान-भोजन करें।

ऋषि स्नान करने सरोवर पर गये। सरोवर पर नज़र पड़ी तो चकित रह गए। सरोवर का पानी रक्त की तरह लाल-लाल हो गया और उसमें कीड़े बिलबिला रहे हैं।

काठियावाड़ के इतिहास की एक बात स्मरण हो रही है। काठियावाड़ के एक चारण की दो ...

रहे थे। एक काठी सरदार ने चोरों से वह भैंसें छुड़ा लीं और अपनी भैंसों के साथ रख लीं। चारण को मालूम हुआ कि हमारी भैंसें अमुक सरदार के पास हैं। वह कुछ लोगों को साथ लेकर सरदार के पास पहुँचा। उसने कहा—हमारी दो भैंसें आपके यहाँ हैं, वह हमें दे दीजिए।

भैंसें दोनों अच्छी थीं। सरदार लालच में फंस गया। उसने कहा— हमारे यहाँ तुम्हारी कोई भैंसें नहीं हैं।

चारणों ने कहा—हैं, आपके यहाँ हैं। आप अपनी भैंसें हमें देखने दें।

सरदार ने सोचा—इन्हें भैंसें दिखलाईं तो पोल खुल जायगी। मैं झूठा ठहरूँगा। बदनामी होगी। उसने इधर चारणों को बातों में लगा रक्खा और उधर दोनों भैंसें कटवा डालीं और ज़मीन में गड़वा दीं। इसके बाद चारणों को अपनी भैंसें दिखला दीं।

चारणों को विश्वास नहीं हुआ। अन्त में शाप देकर वे वहाँ से चले [illegible] चारणों के शाप से या किसी अज्ञात कारण से सरदार जब दूध दुहने बैठता तो दूध में कीड़े बिलबिलाने लगते।

श्रृंगी ऋषि जैसे ब्रह्मचर्य की [illegible] लगाने वाले शक्तिशाली [illegible] सरल और [illegible] की [illegible] करने वाले और [illegible] के विरुद्ध विचार करने वाले इन ऋषियों के [illegible] सरोवर का जल [illegible] हो गया और उसमें

कीड़े बिलबिलाने लगे तो क्या आश्चर्य है ?

सरोवर के स्वच्छ जल की यह दशा देखकर एक ऋषि ने कहा—हमने पहले ही कहा था कि शृंगी और शबरी को दोष मत लगाओ। मगर तुम लोग नहीं माने। यह उसी का परिणाम है।

दूसरों ने कहा—जो हुआ सो हुआ। बीती बात की आलोचना करना वृथा है। अब वर्तमान कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए।

अन्त में ऋषियों ने स्थिर किया कि राम को यहाँ लाना चाहिए। ऋषि मिलकर राम के पास पहुँचे और निवेदन किया-महाराज, पधारो। सरोवर का जल बिगड़ गया है उसमें कीड़े कुलबुला रहे हैं। हमारा सब काम रुका हुआ है। आप यहाँ पधारो और जल को शुद्ध करो।

राम ने कहा—मेरे चलने से कोई लाभ नहीं होगा। आप लोग इस शबरी के स्नान का जल ले जाइए और सरोवर में छिड़क दीजिए। जल शुद्ध हो जायगा।

ऋषि देख रह गये। सोचने लगे-हम शबरी को पतित समझते हैं और राम ऐसा कह रहे हैं !

शबरी ने कहा—महाराज ! आप मेरे ऊपर बहुत बड़ा बोझ डाल रहे हैं। मैं पतिता अपने स्नान का जल इन ऋषियों के हाथ में कैसे दे सकती हूँ ? आप ही पधारिए।

राम—माया में फँसे लोग वास्तविक बात नहीं

सकते। मुझे तुम्हारे दिये बेर खाने में जो आनन्द अनुभव हुआ है, वह दुर्लभ है। यह सब तुम्हारी पवित्र भावना का प्रताप है। तुम पवित्र हो। अपने स्नान का जल इन ऋषियों को देकर सरोवर का जल शुद्ध कर दो।

शबरी—वैसे तो मैं आपकी आज्ञा नहीं लांघ सकती। आप जो कहें वह मुझे शिरोधार्य है परन्तु मुझे अपने स्नान का जल ऋषियों के हाथ में देना उचित मालूम नहीं होता। अगर आपका आदेश हो तो मैं स्वयं चली जाऊं?

राम ने अनुमति दे दी। शबरी ऋषियों के साथ सरोवर पर पहुँची। जैसे ही सरोवर में उसने अपना पांव रक्खा कि जल निर्मल हो गया। यह चमत्कार देखकर ऋषियों की आँखें खुलीं। अपने किये पर पछताने लगे। कहने लगे—ओह! हमने वृथा ही इस सती की अवहेलना की।

शबरी लौट कर राम के पास आई। उसने कहा—महाराज! मैं अब समझ गई [illegible] मुझे इस विचार ने बहुत कष्ट होता था कि मैं [illegible] भला करने को [illegible] पड़ा। आपने मेरा यह दुःख [illegible] है [illegible] मुझे [illegible] है

[illegible]

[illegible]

अर्थात् हृदय में [illegible] और [illegible] लगा रहे [illegible] इतना ही [illegible]

कुछ नहीं जानती। मेरा विवाह होने वाला था। विवाह के भोज के लिए पिता ने पशी पकड़े थे। वे तड़फड़ा रहे थे। मुझसे नहीं रहा गया और उन्हें मैंने मुक्त कर दिया। मैंने सोचा—बेचारे पशी बिना किसी अपराध के मारे जाएँगे और मैं इनकी हत्या में निमित्त बनूँगी।

भगवान् अरिष्टनेमि के विवाह के अवसर पर भी मारे जाने के लिए बहुत-से पशु एकत्र किए गए थे। उन्हें देखकर भगवान् ने कहा था—'मेरे निमित्त से इतने जीवों की हिंसा हो, यह बात मेरे लिए परलोक में शांतिदायक नहीं हो सकती।' क्या हिंसा होने से परमात्मा का भी परलोक बिगड़ता था? नहीं, लेकिन उन्होंने जगत् के जीवों को समझाने के लिए ऐसा कहा है।

शबरी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोग क्रोध, ईर्षा या अभिमान के कारण चाहे जिसे कलंक लगा देते हैं, परन्तु सत्य अन्त में सत्य ही ठहरता है। झूठ अधिक समय तक नहीं ठहर सकता।

जब शबरी ने तालाब का जल निर्मल कर दिया तो उसके [illegible]

कुछ नहीं जानती। मेरा विवाह होने वाला था। विवाह के भोज के लिए पिता ने पक्षी पकड़े थे। वे तड़फड़ा रहे थे। मुझसे नहीं रहा गया और उन्हें मैंने मुक्त कर दिया। मैंने सोचा—बेचारे पक्षी बिना किसी अपराध के मारे जाएँगे और मैं इनकी हत्या में निमित्त बनूँगी।

भगवान् अरिष्टनेमि के विवाह के अवसर पर भी मारे जाने के लिए बहुत-से पशु एकत्र किए गए थे। उन्हें देखकर भगवान् ने कहा था—'मेरे निमित्त से इतने जीवों की हिंसा हो, यह बात मेरे लिए परलोक में शांतिदायक नहीं हो सकती।' क्या हिंसा होने से परमात्मा का भी परलोक बिगड़ता था? नहीं, लेकिन उन्होंने जगत् के जीवों को समझाने के लिए ऐसा कहा है।

शबरी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोग क्रोध, ईर्षा या अभिमान के कारण चाहे जिसे कलंक लगा देते हैं, परन्तु सत्य अन्त में सत्य ही ठहरता है। झूठ अधिक समय तक नहीं ठहर सकता।

जब शबरी ने मातंग का मन निर्मल कर दिया तो उसका सत्य स्थूल रूप में [illegible] उठा। उसकी झोपड़ी तीर्थस्थान के समान बन गई। [illegible] आश्रम में आकर कहने लगे—हमने [illegible] पाया है। [illegible] लोग [illegible] कि राम किस बात से प्रसन्न होते हैं। [illegible] वास्तव

राम मिले।

शबरी की कथा जैनरामायण में नहीं है। तथापि दया और प्रेम की उससे अच्छी शिक्षा मिलती है। इस कथा से पाठक और भी अनेक सद्‌गुण सीख सकते हैं। इसी कारण उसका यहां व्याख्यान किया गया है।

इस कथा से पाठक और भी अनेक सद्‌गुण सीख सकते हैं।

यहाँ इतना स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि तुलसी-रामायण में शबरी की कथा आगे चल कर है। मगर मैंने यहाँ उसका विवेचन कर दिया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण रामायण बांचने के लिए पर्याप्त समय नहीं है। अतएव अवसर देख कर और उपयोगी समझ कर ही यहाँ उसका उल्लेख कर दिया है। मेरा मुख्य लक्ष्य रामायण बांचना नहीं है, रामायण से मिलने वाली शिक्षा को प्रकट करना है। शिक्षा को स्पष्ट करने के लिए घटनाओं का आधार लेना आवश्यक है और इसीलिए मैं अमुक अमुक घटनाएं भी बता रहा हूँ

राम, लक्ष्मण और सीता के साथ शबरी से विदा लेकर आगे चले। शबरी ने किस प्रकार उनकी अभ्यर्थना-प्रार्थना की और किस प्रकार राम ने उसे ज्ञान दिया, यह बात बहुत लम्बी है। उसका उल्लेख नहीं किया जाता। राम आगे बढ़े। ऋषियों ने अपने आश्रम में चलने की प्रार्थना की। राम ने उन्हें कहा—'जिस शबरी के पैर के स्पर्श से सरोवर का जल निर्मल हो गया, वह शबरी यहाँ है। उसका निवासस्थान तीर्थधाम है। आप लोग तपस्वी हैं तो लोकमूढ़ताओं का परित्याग करें। लोकमूढ़ताओं का त्याग किये बिना अलौकिक सिद्धि नहीं मिल सकती।'

इस प्रकार राम आगे चले। राम और लक्ष्मण के बीच सीता ऐसी मालूम होती थी जैसे परमात्मा और आत्मा के बीच माया हो अथवा चन्द्र और बुध के बीच रोहिणी हो। कवियों ने ऐसी अनेक उत्प्रेक्षाएँ की हैं।

सीता चलती-चलती कहतीं—नाथ, देखिए, वन का यह दृश्य कितना भव्य और सुहावना है। आप मुझे अयोध्या में ही रख आना चाहते थे। मैं राजमहल के कारागार में ही कैद रहती तो यह अद्भुत दृश्य कहाँ देखने को मिलते ? वन में मुझे जो आनन्दानुभव हो रहा है वह सुषमा के भव में तो क्या, अनेक भवों में भी नहीं मिला है।

इस प्रकार की बातें करते करते सीता चले जा रहे हैं। सीता ने फिर कहा—नाथ भाग्य बड़ा है या उद्योग ? अगर

भाग्य बड़ा है तो क्या वह उद्योग के बिना फल सकता है? अगर उद्योग बड़ा है तो क्या वह भाग्य के बिना सफल हो सकता है?

राम ने सीता के प्रश्नों का प्रेमपूर्वक उत्तर दिया। दोनों में खूब चर्चा हुई। लक्ष्मण ने भी उसमें भाग लिया। अन्त में राम ने कहा—नाम कुछ भी हो, वास्तविकता देखनी चाहिए। तुम्हारे साथ तो दोनों हैं-उद्योग भी है और भाग्य भी है। मेरा भाग्य और लक्ष्मण का उद्योग तुम्हारा साथी है। दोनों के सहयोग से सब काम होते हैं। भाग्य के भरोसे रहकर उद्योग को छोड़ बैठना उचित नहीं है और भाग्य का निर्माण उद्योग से ही होता है।

सीता ने कहा—भाग्य आपका नहीं, मेरा बड़ा है। लक्ष्मण के भाग्य से भी मेरा भाग्य बड़ा है। आप के साथ आने में लक्ष्मण को कोई कठिनाई नहीं पड़ी। इन्हें किसी ने रोकने का प्रयत्न नहीं किया। लेकिन मुझे रोकने के लिए क्या कम प्रयत्न हुआ था? फिर भी मैं आप के साथ यहाँ आ सकी। इसी से जानती हूँ कि मेरा भाग्य बड़ा है।

राम—प्रिये! जो माया के सुख देखकर परमार्थ को भूल जाते हैं, वे एक तरह से भाग्य को ही भूल जाते हैं। भाग्य का सदुपयोग करने वाले वह हैं जो कल्पित सुखों के भुलावे में न पड़कर पारमार्थिक कार्य करते हैं। अर्थात् धर्म को न भूलने वाला ही भाग्य का उपयोग करता है। सीते!

कदाचित् तुम्हारा भाग्य बड़ा है तो मेरा और लक्ष्मण का उद्योग बड़ा है। हम लोग वन में न आते तो तुम्हारा भाग्य क्या करता ?

इस प्रकार मनोरंजन की बातें करते-करते तीनों चले जा रहे हैं। कुछ आगे चलने पर सीता ने दो वृक्ष देखकर कहा—'नाथ! इन दो वृक्षों को देखो। दोनों साथ हैं, दोनों की ऊँचाई भी बराबर है। लेकिन एक फल रहा है और दूसरा झड़ रहा है। यह अन्तर क्यों है ?

आप महुए और आम के वृक्षों को देखेंगे तो पता चलेगा कि जब महुए के पत्ते झड़ते हैं तब आम के पत्ते आते हैं। ऐसी ही कोई बात इन वृक्षों में भी होगी।

सीता के प्रश्न के उत्तर में राम ने कहा—प्रिये ! यह दोनों वृक्ष संसार का स्वरूप बतलाते हैं। मनुष्यलोक की ऐसी ही रचना है। यहाँ एक गाता है और दूसरा रोता है। एक झाड़ दूसरे के सूख जाने पर रोता नहीं है। रोए तो अपनी भी मस्ती गवा बैठे। डाल की एक डाली दावा से जल जाती है, दूसरी बच जाती है। बची हुई डाली जली हुई डाली की सहानुभूति में अपने को सुखा नहीं डालती। वह फलती है, फूलती है और पुनः [illegible] जाती है। इतर वृक्ष में जो गुण है, नहीं है यह मनुष्य में पाई जाती है। मनुष्य पर जब आकस्मिक दुःख आता है तो वह एक और नया दुःख चिन्ता के द्वारा उत्पन्न कर लेता है

राम कुछ और आगे चले। सीता को वहाँ एक पेड़ दिखाई दिया, जो एकदम झंखाड़ हो गया था। सीता ने कहा—देखिए, इसके नीचे फूल भी पड़े हैं और शूल भी पड़े हैं।

राम—सीते! यह संसार इस झंखाड़ के समान ही है यहाँ शूल भी हैं, फूल भी हैं। नज़र चूकी और शूल पर पाँव पड़ा तो वह चुभे बिना नहीं रहता। गति में सावधानी रही तो फूलों पर पैर पड़ेगा। आनन्द होगा।

यह संसार झाड़ अरु झांखर,
आग लगे-जल जाना है।
रहना नहीं देश विराना है।
संसार कटिन की वाड़ी।
उलझ उलझ मर जाना है।
रहना·········विराना है।

यह सत्य इतना सर्वव्यापी है कि राम और सीता पर भी घटित होता है। ऐसी दशा में इससे और कोई कैसे छुटकारा पा सकता है।

राम चलते-चलते और आगे पहुँचे। परस्पर वार्तालाप करते हुए और साथ ही तत्त्व की बातों पर विचार करते हुए आनन्द के साथ तीनों चले जा रहे थे। उनके आनन्द का क्या वर्णन किया जा सकता है? एक जगह घने वृक्षों में मधु-मक्खियों के छत्ते लगे थे। उन्हें देखकर राम ने

राम—प्रिये, यह देखो।

सीता—यह क्या है?

राम—इस वन में सैकड़ों घड़े रस से भरे हुए पेड़ों पर लटक रहे हैं। उनमें से कुछ यह हैं। यह मधु-मक्खियों की रचनात्मक कृति है।

सीता—ओह! मधुमक्खियों की यह कृति सराहनीय है। जब क्षुद्र मक्षिकाएँ ऐसा सुन्दर कार्य कर सकती हैं तो मनुष्यों को कितने सुन्दर कार्य करने चाहिए!

मानवीय भौतिक विज्ञान ने संसार को जो देन दी है उससे मनुष्य की मनुष्यता ही खतरे में पड़ रही है। इस विज्ञान के द्वारा मनुष्य-समाज का संहार सरल हो गया है। बात की बात में हजारों-लाखों निरपराध मनुष्यों की हत्या कर डालना साधारण बात हो गई है। मगर मधु-मक्खियों का विज्ञान और उनकी कला ऐसी नहीं है। उससे किसी का अहित नहीं, हित ही होता है। उनके विज्ञान को देखकर मनुष्य को दंग रह जाना पड़ता है। मक्खियाँ पहले छत्ता तैयार करती हैं। छत्ता बनाने में ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लिया जाता है कि छत्ते के सारे खाने बराबर और एक से होते हैं न कोई छोटा न बड़ा फिर इन खानों में मोम लगाती हैं जिससे शहद बाहर न जाए मोम इतना कम लगाती हैं कि जिससे [illegible] जिससे [illegible]

वाले कारीगर ने किसी से यह कला सीखी होगी, मगर यह मक्खियाँ किस गुरु के पास सीखने गई हैं! मोम लगा चुकने पर मक्खियाँ शहद लाना आरंभ करती हैं। वे पुष्प-विज्ञान में बड़ी 'पंडिता' होती हैं। उन्हें मालूम रहता है कि किस-किस फूल में कैसा-कैसा रस होता है? रस लाने के लिए उनके पास वही एक औजार है, जिससे उन्होंने छत्ता बनाया और मोम लगाया था। दूसरा औजार उनके पास नहीं है। एक ही से यह सब काम ले लेती हैं। कम से कम मोम लगा कर वह अधिक से अधिक रस भरती हैं। इस तरह की क्रिया करके वह रस का संचय करती हैं। उसे स्वयं खाती नहीं और दूसरा लेने आता है तो अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ उसका सामना करती हैं। उनका तैयार किया हुआ शहद ऐसा होता है कि संसार का कोई भी पकवान उसकी समता नहीं कर सकता।

शहद की मक्खी के विषय में एक उक्ति प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक बार राजा भोज दरबार में बैठे थे। इतने में उनके सामने एक मक्खी आई [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] आई है। तुमसे इसने एक फ़रियाद की थी। मैं ने कहा-[illegible] लिये कुछ न होगा। तुम राजा के पास जाओ, उनसे [illegible] करो।

राजा ने पूछा—इसकी फ़रियाद क्या है?

कवि ने कहा—

देयं भोज ! धनं सदा सुकृतिभिर्यत् संचितं सर्वदा,
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्त्तिः स्थिता ॥
अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात् संचितं,
निर्वेदादिव पाणिपादयुगलं घर्षत्यहो मक्षिका ॥

यह मक्खी कहती है—महाराज भोज ! संचित धन को दान में लगाओ। संचय ही संचय करने से क्या लाभ होगा? दान के कारण ही बलि, कर्ण, विक्रम आदि प्रसिद्ध हैं। आज वे नहीं हैं, फिर भी उनकी कीर्त्ति बनी हुई है। संचय करने से उनकी कीर्ति नहीं फैली। अगर तुम संचय ही करते रहे और दिया कुछ नहीं तो यह नतीजा भोगना पड़ेगा जो मुझे भोगना पड़ा है। जो बात बिन्दु में है, वही सिन्धु में है। मैं ने बड़ी चतुराई से मधु संचित किया न दान दिया, न खाया। अन्त में लूटने वाले [illegible] हो गई।

[illegible]
[illegible]
[illegible]

पामर प्राणी !

चेते तो चेताबु' तो ने रे !

इतिहास में भी एक ऐसी घटना का उल्लेख है। कहते हैं—जब देव-गिरि का किला टूटा तो उसमें से बहुत द्रव्य निकला। शायद छह सौ मन मोती, डेढ़ सौ मन हीरा और दस हजार मन चाँदी तौलकर मुसलमानों को संधि में देनी पड़ी। अगर यह सत्य है तो देवगिरि का संग्रह कितना विशाल रहा होगा ! संग्रहकर्त्ता ने कभी सोचा होगा कि यह संग्रह किसी दिन लुटेरों के हाथ लग जाएगा ? मगर लुटेरे आये और लूटकर चलते बने।

मक्खी के पास मधु था इसलिए मधु लूटा गया। तो क्या आपकी धनसम्पत्ति नहीं लुटेगी ? धनसम्पत्ति के लुटेरों की क्या कमी है ? पृथ्वी का एक ही कम्पन करोड़ों का द्रव्य हड़प कर जाता है। आग की लपटें देखते-देखते लाखों की पूँजी स्वाहा कर डालती हैं। नदी की बाढ़ भयानक सर्पिणी के समान सरपट भागती आती है। पल भर में प्रलय मचा देती है। यह सब प्राकृतिक उपद्रव हैं। इनके अतिरिक्त चोर, डकैत, लुटेरे, गठकटे आदि भी कम नहीं हैं। अपनी सम्पत्ति को किस-किस से बचाने की कोशिश करोगे ? कदाचित भाग्य तेज हुआ और इन सब से धन बचा भी लिया तो मृत्यु के सामने आने पर क्या उपाय करोगे ? उस समय किसी की सहायता काम नहीं आएगी।

...ना से कमाई सारी पूँजी पाई-पाई त्यागनी होगी और सिर्फ पाप-पुण्य लेकर प्रस्थान करना पड़ेगा। जिनके पास संपत्ति नहीं है, उनके पास भी शरीर तो है ही। वह भी एक दिन त्यागना पड़ेगा। अतएव कल्याण इसी में है कि पुण्य के योग से जो कुछ भी आर्थिक, शारीरिक या बौद्धिक वैभव तुमको मिला है, उसे परोपकार के पुनीत कार्य में व्यय कर दो। शरीर का मांस भी लुटने को है, जवानी भी लुटने को है। इसे सुकृति में लगाओ। गरीब और अमीर—सभी को समझ लेना है कि केवल संग्रह करने में लगने का परिणाम दिवालिया बनना है। स्त्रियों को सोना बहुत प्रिय लगता है। मगर सोना पहनने से क्या जल्दी स्वर्ग मिलता है! वर्त्तमान छोटा और भविष्य बहुत लम्बा है। तुम्हें भविष्य से मुकाबिला करना है। इसलिए वर्त्तमान से आगे भी देखो और भविष्य की तैयारी करो।

राम की बात सुनकर सीता ने कहा—नाथ! आपने भली विचारी कि स्वेच्छापूर्वक राज्य त्याग दिया। हमें इन मक्खियों से शिक्षा लेनी चाहिए। मक्खियाँ मधु के द्वारा दूसरों का मुख मीठा करती हैं [illegible] मनुष्य को कम से कम [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

लिए वन भी कैसा आनन्दमय हो गया है! सीता वन को अवध से भी अधिक सुखद मान रही है। वह कहती है—मेरे लिए वन क्रीड़ास्थल बन गया है। मैंने महल में जो सुख नहीं पाया था वह यहाँ मिल रहा है।

बाह्य पदार्थों में न सुख है, न दुःख है। सुख-दुख तो अधिकांशतः मन की परिणति हैं। यही कारण है कि एक को जिस वस्तु में सुख का स्वाद आता है, उसी में दूसरे को दुःख की गंध आती है। एक ही वस्तु किसी समय आनन्ददायक प्रतीत होती है तो वही वस्तु दूसरे समय उसी को दुखदाई जान पड़ने लगती है। यह सब मन की संवेदना मात्र है। मन को समझा लेने पर स्थिति और ही हो जाती है। फिर प्रत्येक परिस्थिति में आनन्द ही आनन्द दीखता है।

सीता कहती है—'प्रभो! बगीचे में माली जल सींच-सींच कर थक जाते हैं, फिर भी वहाँ वृक्ष इतने बड़े नहीं होते। और यहाँ के पेड़, जरा देखिए तो सही, कितने बड़े-बड़े हैं! इन्हें यहाँ कौन सींचने आता है?,

प्रजा के दुर्भाग्य से आज जंगल कटते जा रहे हैं, मानो प्रजा का भाग्य ही कट रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य का जंगल के साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बात पर विचार किया जाय तो जंगल का महत्त्व मालूम होगा।

सीता की बात सुन कर राम ने कहा—'प्रिये! कभी-कभी मनुष्य यह विचार कर रोता है कि हाय, अब मेरा क्या

[?]! अगर यह इन वृक्षों को देखे तो उसे पता चलेगा [?] भाग्य कुछ ऐसा वैसा नहीं है। इन वृक्षों को कौन [?] है? इनकी चोटी तक पानी कौन पहुंचाता है ? [?] भी यह हरे-भरे हैं! इनसे शिक्षा मिलती है कि जो [?] परिस्थिति में है, उसका जीवन उसी परिस्थिति में [?] बीत सकता है। आवश्यकता धैर्य की है।'

[?] और आगे चलकर सीता कहने लगी—'नाथ! जिन [?]-दांतों के लिए लोग मारे-मारे फिरते हैं और जिन [?] के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, वे हाथी-दांत [?] मोती तो यहां बिखरे पड़े हैं। यहां इनकी कोई पूछ ही [?] है। मैं जब घर पर थी तो इन चीजों पर बड़ी ममता [?]। आज इनकी कोई कीमत ही नहीं जान पड़ती।'

काल-चक्र के तीसरे और चौथे आरे के वर्णन में बतलाया [?] है कि उस समय हीरा, पन्ना आदि रत्न कंकरों की तरह [?] रहते थे। उस समय के लोगों को उनकी परवाह नहीं [?]। बात यह है कि वे लालची नहीं थे। आज लालच बढ़ [?] है तो रत्नों की भी कमी हो गई है। जहां लालच है वहां [?] की कमी है। जहां लालच नहीं [?] किसी वस्तु की [?] ही नहीं।

वन-वासियों की [?]

[?]नों जने और आगे [?] [illegible]
[illegible]

नारियों के झुंड के झुंड इकट्ठा हो जाते थे। सीता जब थकी मालूम होती तो राम, लक्ष्मण से कहते—भाई, यह वट वृक्ष अच्छा है। कुछ देर ठहर जाओ। राम की बात सुनकर लक्ष्मण समझ जाते कि जानकी थक गई हैं।

लक्ष्मण दौड़ कर पत्ते आदि ले आते, बिछा देते और उस पर विराजने के लिए निवेदन करते। जहाँ यह त्रिमूर्ति बैठ जाती वहाँ के नर-नारी अपने भाग्य की सराहना करने लगते। कहते—अपने भाग्य बड़े अच्छे हैं कि राम, लक्ष्मण और सीता यहाँ विराजे हैं और हमें उनके दर्शन करने का अधिक अवसर मिल गया है। ग्रामीण लोग खाली हाथ आना अनुचित समझते थे। अतः आते समय कोई जल का भरा लोटा लाता, कोई फल लाता, कोई मेवा लाता, कोई कुछ और लाता। इस प्रकार कुछ न कुछ भेंट लेकर जनता इनके सामने आती और बड़ी श्रद्धा-भक्ति-प्रीति के साथ उन्हें अर्पित करती थी। लोगों का आंतरिक प्रेम देखकर राम कहते—'सीते ! क्या इनका आतिथ्य स्वीकार नहीं करोगी ?' तब सीता कहती—आतिथ्य तो सब अवध में छोड़कर ही हम यहां आये हैं। फल जंगल में ही बहुत हैं। गांव का तो पानी पी लेना ही पर्याप्त है

सीता की बात से राम समझ जाते कि इसे प्यास लगी है। तब राम ग्रामीणों से कहते — आप लोग और कुछ देने का कष्ट न करें, [illegible] जब लोग न मानते

करती देखकर सीता सोचतीं—मैं अभी तक कैसे बंधन में थी? मैं इन भोली बहिनों से बातचीत भी नहीं कर सकती थी। अच्छा हुआ मैं पति के साथ वन आई और एक बड़े बंधन से छूट गई। आज दिल खोल कर दूसरों से बात कर सकती हूँ। और दूसरों की सुन सकती हूँ। छोटे-बड़े का कल्पित भेद समाप्त हो गया, यह बड़े आनन्द की बात है।

स्त्रियों के प्रश्न का सीता उत्तर देती—यह जो छोटे हैं, मेरे देवर हैं। महाराज दशरथ के पुत्र और महारानी सुमित्रा के आत्मज हैं। स्त्रियां पूछती—और यह दूसरे कौन हैं? तब सीता स्त्री स्वभाव के अनुसार कुछ लजा जाती। कहतीं—मेरे देवर के बड़े भाई हैं स्त्रियां समझ लेतीं—तब तो यही राम हैं। और आप सीताजी होंगी? स्त्रियां कहती—हाँ मेरा नाम सीता है-तुम्हारा अन्दाज सही है।

यह जान कर स्त्रियों के हर्ष का पार न रहता। वे आपस में कहने लगतीं-अरी सखियो! हमारे बड़े भाग्य हैं कि सीताजी के साथ राम और लक्ष्मण यहां पधारे हैं। अपनी आंखें सार्थक कर लो। जन्म सुधार लो। उनके दर्शन कर लो।

कोई स्त्री सीता की सुकुमारता और राम लक्ष्मण की सुन्दरता देखकर कहती इनके माता पिता ने इन्हें वन में भेजने की हिम्मत कैसे की होगी? उनकी छाती कितनी कठोर

सीता की बात सुनकर स्त्रियाँ आपस में कहतीं-सुनो यह क्या कहती है ! अपन कैकेयी को कोसती थीं और सीताजी उनका उपकार मानती हैं ? बहिनो, हम अपने पाप धो डालें तो ठीक है । इनकी सासू ने इतना किया-इन्हें घर से निकाल दिया, फिर भी यह उनका उपकार ही मानती हैं। अगर अपनी सासू कड़ी बात कह दें तो अपन को भी उनके प्रति बुरे विचार नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार पुरुषों में भी तरह-तरह की बातें होतीं। जब सीता की थकावट दूर हो जाती तो लक्ष्मण कहते—'हमें आगे जाना है । वन का मार्ग बता दो। आनन्द में रहना। तुम्हारे किये स्वागत के लिए हम आभारी हैं ।'

यह सुनकर उपस्थित नर-नारियों के हृदय में धक्का-सा लगता। उनके वियोग में बहुत-सी आँखें आंसू बहाने लगतीं। बहुतेरे लोग रास्ता बताने उनके साथ चलते। मगर राम अपने प्रेमपूर्ण स्वर से उन्हें साथ न चलने के लिए समझाते और रास्ता जानकर आगे चल देते। उन्हें जाते देख कोई स्त्री कहती—जब ऐसे-महापुरुष भी पैदल चलते हैं तो बड़े-बड़े वाहन वृथा ही बने हैं ! नाक वाले को फूल न मिले और पीनस वाले को मिले तो फूल का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए ! अंधे को काजल मिले और आंख वाले को न मिले, बहरे को संगीत सुना या जाय और कान वाले को नहीं, तो जैसे यह उलटी रीति है वैसे ही इन्हें वाहन न मिलना और

वृक्ष हुआ है! सब की चिन्ता हरने वाला चिन्तामणि पत्थर हुआ है! कामधेनु पशु है! इस प्रकार विधि की सभी लीलाएँ निराली हैं। यही बात इनके लिए भी है। यह तीनों सुख के योग्य है पर आज सुख-विहीन होकर वन में विचरते हैं।

कोई कहती--पूर्व जन्म के कर्म किसी को नहीं छोड़ते। सभी को भोगने पड़ते हैं। इन्होंने भी कुछ ऐसे ही कर्म किये होंगे।

इसकी बात काटती हुई दूसरी कहती--ना बहिन, ऐसा मत कहो। यह महाभाग्यशाली हैं। तुम्हें विश्वास न हो तो इन्हीं से पूछ लो।

यह कहती--वे तो जा रहे हैं। पूछें कैसे?

तब एक साहसी स्त्री झपट कर आगे बढ़ती और सीता के पास आकर कहती--आप जाती तो हैं, पर जाती-जाती एक बात बता दें तो कृपा होगी।

सीता--पूछो, पूछो बहिन! क्या जानना चाहती हो?

तब उसने कहा--क्या कारण है जो आपको राजमहल त्यागना पड़ा है और इस प्रकार वन में भटकना पड़ रहा है? क्या आपके किसी पूर्वकृत अशुभ कर्म का यह फल है?

सीता ने कहा--बहिन तुम भूल में हो। थोड़ी देर के हमारे परिचय से तुम्हें सुख उपजा है या नहीं? अगर हम

घर पर ही रहते तो तुम्हें यह सुख कैसे होता ? फिर तुम्हीं सोचो कि हम पुण्य के उदय से वन में आये हैं या पाप के उदय से ? सुख छूट जाने पर जो रोता है उसे पाप का उदय समझना चाहिए। लेकिन जिन्होंने अपनी इच्छा से सुख त्यागा है, उन्हें पाप का उदय नहीं है। उनका पुण्य उदय में आया है। पुण्य के उदय से ही हमारा वन में आना हुआ है, इसी से तुम जैसी अनेक बहिनों को आनन्द मिलेगा।

सीता का ऐसा उत्तर सुनकर स्त्रियां प्रसन्न हो जातीं। कहतीं—धन्य हैं राजा जनक, धन्य हैं महाराज दशरथ, धन्य हैं महारानी कौशल्या और सुमित्रा! वह नगर और ग्राम भी धन्य है जहां आपके पैर पड़ते हैं। आज हमारे भाग्य खुले कि आपके दर्शन हुए। हमारे नेत्र आज सफल हुए। बस, यही प्रार्थना है कि जब आप लौटें तो इधर से ही लौटें। हमें दर्शन देती जाएं।

सीता उनसे कहतीं—कल का भी क्या ठिकाना है बहिन! मैं हमेशा तुम्हारे पास नहीं रह सकती। हां, मेरा धर्म सदैव तुम्हारे पास रह सकता है। अगर तुम मेरे धर्म को अपना लो तो मेरी आवश्यकता [illegible] नहीं रहेगी

इस प्रकार राम सीता और लक्ष्मण जिधर निकल जाते, उधर एक अपूर्व [illegible] और उनका साथ नहीं छोड़ना चाहते [illegible] साथ छोड़ जाते तो वे [illegible] आंखों के जो मोत

खेत-खलिहान में होने और राम के आने पर उनके दर्शन से वंचित रह जाते थे, वे बाद में आकर घोर पश्चात्ताप करते। उनमें जो सबल होते, दौड़ कर उसी ओर जाते जिस ओर राम गये होते। निर्बल पछताते रह जाते। राम को देखने वाले उनसे कहते—तुम्हारा पछताना ठीक ही है। वास्तव में बड़ा लाभ खो दिया है। मगर अब पछताने से क्या लाभ है ?

अधीर अवध

——::::()::::——

अब हमें अवध पर दृष्टि डालना चाहिए। राम, लक्ष्मण और सीता के चले जाने के पश्चात् अवध सूना हो गया। सर्वत्र उदासी और विषाद का साम्राज्य छा गया। ऐसा जान पड़ता मानों अवध की श्री सीता के रूप में, अवध का सौभाग्य राम के रूप में और अवध का सुख लक्ष्मण के रूप में चला गया। अवध उसे भयावना लगने लगा।

अवध की जनता का चित्त परिताप से पीड़ित था। राज-परिवार ऐसा मालूम होता जैसा किसी ने अभी-अभी उसका सर्वस्व छीन लिया हो। महारानी कौशल्या का क्या पूछना है? उन्हें क्षण भर के लिए चैन नहीं था। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते उन्हें अपने दोनों पुत्रों और पुत्रवधू की ही चिन्ता रहती। सोचतीं-इस समय राम आदि कहाँ होंगे? क्या करते होंगे? हाय, सुकुमारी सीता कैसे पैदल चलती होगी? कहाँ सोती होगी? कौन जाने किस जन्म का मेरा प्रबल पाप उदय आया है!

इस प्रकार अवध में घर-घर दुःख व्याप रहा था। लेकि—

भरत को जो कष्ट हुआ, उसकी तुलना शायद किसी से नहीं हो सकती। भरत अन्तर्दाह से भीतर ही भीतर दग्ध हो रहे थे। उन्होंने अपने आपको सब से ज्यादा पापी माना। वह सोचने लगे—'माता को क्या दोष दिया जाय और प्रजा का तो कोई अपराध ही नहीं है। पिताजी ने भी अपने वचन का पालन करके महापुरुषों के मार्ग पर चलने का विचार किया। यह विचार उत्तम ही है। इस तरह और किसी का अपराध नहीं है—अपराध सिर्फ मेरा है। मैं पापी हूं। मेरे ही कारण राम, लक्ष्मण और सीता को वन में जाना पड़ा।' इस प्रकार विचार कर भरत अत्यन्त दुःखित रहने। उनकी व्यथा इतनी अधिक थी कि वह भीतर ही भीतर छिपी नहीं रहती। उनके नेत्र उनकी अन्तर्व्यथा को प्रगट कर देते और उनका विषाद्-मय मुख उसकी साक्षी देता था। राम के वन जाने के बाद कभी किसी ने भरत को प्रसन्न नहीं देखा।

भरत को इस प्रकार दुःखी होते देख प्रधान प्रजाजनों ने उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा-'आप क्यों दुःखी होते हैं ? आपने राम को निर्वासन नहीं दिया है। उनके निर्वासन में आपका कोई हाथ भी नहीं है। आप सर्वथा निरपराध हैं। यह बात हम सभी लोग जानते हैं और हम से ज्यादा आप स्वयं जानते हैं।'

भरत ने कहा-प्रजाजनो ' प्रथम तो यह कि उनके निर्वा-सन में मैं ही निमित्त हूँ। अगर मेरा जन्म ही न होता तो

राम को वनवास क्यों भोगना पड़ता ? कैकेयी माता के उदर से जन्म लेना ही मेरे लिए अपराध और पाप हो गया। कदाचित् मैं निर्दोष भी मान लिया जाऊं तो भी क्या मुझे संतोष हो सकता है ! मैं अपने लिए नहीं रोता। राम और लक्ष्मण सरीखे लोकोत्तर पुरुषों का और सीता सरीखी सती का वन-वन में भटकना और मेरा राजमहल में रहना ही मेरे लिए घोर व्यथा का कारण है।

प्रजाजन—राम तो चले ही गये हैं। अब आप उनके जाने के दुःख में ही डूबे रहेंगे और प्रजापालन की ओर ध्यान न देंगे तो प्रजा की क्या स्थिति होगी ? राम के वियोग में हम लोग दुखी हैं। इस दुख के दाह पर आपको चन्दन लगाना चाहिए या नमक ? आप जले पर नमक छिड़कने का काम कर रहे हैं। स्वयं दुःख में डूबे रहकर प्रजा का दुःख बढ़ा रहे हैं। पानी की वर्षा के बिना कुछ वर्ष तक काम चल सकता है पर राजा के बिना—राज्यव्यवस्था के अभाव में—घड़ी भर चलना कठिन है। आप स्वयं तत्त्वज्ञ हैं। परमार्थ के ज्ञाता हैं। संसार के स्वरूप को आप भलीभाँति समझते हैं। आपको क्या समझाएं ? होनहार होकर ही रहता है। अतएव आप शोक का त्याग करें। राम कह गये हैं कि भरत को देखकर मुझे भूल जाना। मगर आप तो दुःख की साक्षात् मूर्ति बने हैं। हम लोग आपको देखकर राम को कैसे भूलें ?

प्रजाजनों में जो सब से वृद्ध थे, कहने लगे—'महाराज !

आप चिन्ता क्यों करते हो ? चिन्ता उस क्षत्रिय के लिए की जाती है जो पतित होता है और क्षात्रधर्म का पालन नहीं करता। आप किसकी चिन्ता करते हैं ? आप अपने पिता को देखिए, जो राजपाट त्याग कर संयम ग्रहण करने की तैयारी कर रहे हैं और जिन्होंने अपने प्राणों से अधिक प्रिय पुत्र को वन भेज दिया किन्तु धर्म नहीं छोड़ा। इसी प्रकार ब्राह्मण वह चिन्ता के योग्य है जो अपना कर्म छोड़कर आजीविका के लिए ही शास्त्रों का अर्थ बताता फिरता है। और वह वैश्य भी चिन्ता के योग्य है जो अपना ही पेट भरता है, वाणिज्य-व्यवसाय में बेईमानी करता है और कृपण है। हे भरतजी ! आपके यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-सभी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। शूद्र भी अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति पालन कर रहे हैं। फिर आप किस की चिन्ता करते हैं ?

संसार में चारों वर्ण अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो संसार का बड़ा हित हो। मगर आज वर्णव्यवस्था का असली स्वरूप विकृत हो गया है। वर्णव्यवस्था में कर्त्तव्य-पालन की प्रधानता नहीं रही और ऊँच-नीच की अनुचित एवं असत् भावना व्याप्त हो गई है। वस्तुतः ऊँचा वह है जो अपने वर्ण के अनुकूल कर्त्तव्य का भलीभाँति पालन करता है। और नीच वह है जो अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है। इस तरह चाहे कोई ब्राह्मण हो या शूद्र हो, अगर वह कर्त्तव्यनिष्ठ है तो ऊँचा है और अगर कर्त्तव्य से च्युत हो तो

भक्त लोग इस प्रकार अपना पाप स्वीकार कर लेते हैं। इसी कारण उनका चित्त निर्मल हो जाता है। आपको चित्त-शुद्धि करनी हो तो आप भी अपने दोष देखो और परमात्माके समक्ष उन्हें प्रकट कर दो। अपने पाप कदाचित् दूसरों से छिपाने में समर्थ भी हो जाओगे तो भी परमात्मा से नहीं छिपा सकते। परमात्मा रत्ती-रत्ती जानता है। अतएव पापियों से घृणा करने के बदले अपने पापों से ही घृणा करो। यह कल्याण का मार्ग है।

भरत से उनके गुरुजन कहते—हे भरत! तुम किसकी चिन्ता करते हो? शोचनीय तो वे साधु हैं जिन्होंने केवल पेट भरने के लिए साधुपन अंगीकार किया है। राजा होने के नाते ऐसे साधुओं की चिन्ता तुम्हें हो सकती है। पर तुम्हारे राज्य में तो ऐसे साधु भी नहीं हैं। फिर किस बात की चिन्ता करते हो?

हे भरत! तुम्हारे राज्य में चारों आश्रम भी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। फिर चिन्ता का कारण क्या है? उठो, चिन्ता छोड़ो और राज्य संभालो। चिंतित रहने से राज्य—व्यवस्था बिगड़ जायगी।'

कौशल्या भी भरत को उदास देखकर कहती—वत्स भरत! तुम मेरे लिए दूसरे राम ही हो। मेरे लिए राम और भरत दो नहीं हैं। तुम्हें देखकर मैं राम के वियोग का दुख भूल जाती हूँ। लेकिन तुम तो मुझसे भी ज्यादा शोकातुर रहते

हो! राम वन गये, पति विरक्त हैं और तुम्हारी यह दशा है! ऐसी स्थिति में राजपरिवार और प्रजा का क्या हाल होगा? वत्स? चिन्ता छोड़ो। भवितव्य को कोई टाल नहीं सकता। स्वस्थ होकर कर्त्तव्य पूरा करो।

इस प्रकार माता-पिता तथा गुरुजन—सभी भरत को समझाते थे। वे शास्त्र का प्रमाण भी देते थे कि—

आज्ञा गुरूणां खलु धारणीया।

गुरु-जनों का आदेश अवश्य मानना चाहिए। पिताजी कहते हैं—मेरी दीक्षा में विघ्न मत डालो। और हम आपके गुरुजन भी कहते हैं कि आपको राज्य संभालना चाहिए। गुरुजनों की आज्ञा पालने वाला प्रशंसनीय होता है। आपको किसी तरह का कलंक नहीं लगेगा। अतः राज्य संभालिए। माता, पिता, गुरुजन और प्रजाजन—सभी ने भरत से राज्य स्वीकार करने का आग्रह किया। कोई और होता तो इस अवसर को हाथ से न जाने देता। यह सोचता—राज्य भी मिलता है और कलंक भी नहीं लगता तो चूकना ठीक नहीं। बस राज्य ले लेना ही अच्छा है। गुरुजनों का आदेश शिरोधार्य करने के बहाने वह राजा बन बैठता। मगर वह भरत थे। उन्होंने आंसू बहाकर ही सब की बातों का उत्तर दे दिया। वे सोचते—एक तो कौशल्या माता हैं, जो राम के जाने पर भी मुझे राम के समान ही मान रही हैं और राज्य करने की प्रेरणा कर रही हैं, और दूसरी कैकेयी माता हैं, जिन्होंने इतना

बनाया काम बिगाड़ दिया। पिताजी भी धन्य हैं जो राजपाट त्याग कर मुनिदीक्षा अंगीकार करने के लिए उत्सुक बैठे हैं और मुझ से राज्य स्वीकार करने का आग्रह कर रहे हैं। वे कहते हैं-अपयश होगा तो मेरा होगा कि दशरथ ने राम के हक का राज्य भरत को दे दिया !

कुछ आश्वस्त होकर भरत ने कहा—गुरुजनो ! मैं कुछ कह नहीं सकता। लेकिन कहे बिना काम नहीं चलता। आप सब मेरी प्रशंसा करते हैं लेकिन कैकेयी माता को बुरा समझते हैं, यह क्यों ? इसीलिए तो कि उन्होंने राम का राज्य छीन लिया ? मगर उन्होंने ऐसा क्यों किया है ? बिना कारण के कार्य नहीं होता। अतएव कैकेयी माता की बुराई का कारण मैं ही हूं। जिसके लिए यह बुरी बनी हैं यह भला कैसे हो सकता है ? अगर मैं राज्य लूंगा तो घोर अनर्थ हो जायगा। कभी-कभी कारण की अपेक्षा कार्य बहुत कठोर होता है। दधीचि की हड्डियां कारण थीं और उनसे वज्र हुआ वज्र कार्य था। वज्र हड्डियों की अपेक्षा अधिक कठोर था। पत्थर से निकलने वाला लोहा पत्थर की अपेक्षा बहुत कठोर होता है। इसी प्रकार मैं कार्य हूं और माता कारण हैं। मैं उनसे भी खराब हूं। ऐसी दशा में आप मुझे राजसिंहासन पर कैसे बिठा सकते हैं ? सुगंधहीन पुष्प और प्राणहीन शरीर को कौन ग्रहण करेगा ? मैं प्राणहीन शरीर के समान हूं। मेरे प्राण तो राम और सीता थे। वे चले गये। मैं मृतकवत हूं।

कार्य को करने का दृढ़ संकल्प कर लेते हैं, उसमें विलम्ब नहीं सह सकते। 'शुभस्य शीघ्रम्' उनका लक्ष्य बन जाता है। दशरथ ने दीक्षा लेना श्रेयस्कर समझा था और इसी कारण राज्य की नवीन व्यवस्था की थी। पर बीच ही में यह विघ्न आ खड़ा हुआ। किसी के घर में आग लग गई हो, घर वाला बाहर निकलने को तैयार हुआ हो और उसी समय कोई बाहर से द्वार बन्द करदे तो जलते घर में रहने वाला कितना बेचैन होगा? कोई डूबता आदमी किसी वृक्ष की डाली का सहारा ले और उसी समय डाली काट दी जाय तो डूबने वाले की क्या स्थिति होगी? दशरथ भी इसी प्रकार बेचैनी की हालत में समय बिता रहे थे। यह सोच रहे थे–

आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए।

प्रभो! यह लोक चारों ओर से जल रहा है, प्रभो! यह लोक बुरी तरह जल रहा है। मैं इस आगसे निकलना चाहता था, लेकिन अचानक ही एक बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया।

राम को लाने के लिए मंत्री का गमन

इस प्रकार विचार कर दशरथ ने अपने मंत्री को बुलाकर कहा–'मंत्री! तुम्हीं मेरी डूबती नैया को पार लगाओ। जिस प्रकार भी संभव हो, राम को लौटा लाओ। कदाचित् राम न लौटें तो सीता को ही ले आना। वह उस समय राम के साथ वन जाने को उत्कंठित हो गई थी। उस समय उसे वन के

के कार्य में आप ही चिन्तित होंगे तो धर्म का पालन कौन करेगा ?'

'प्रधानजी ! आपसे भी मेरी प्रार्थना है कि पिताजी को जब मेरे लिए दुःख हो और जब वे मोह के वश होकर धर्म को विस्मरण करने लगें तो आप उन्हें समझाते रहना कि धर्म पालने का यह सुलभ अवसर है। इस सुअवसर का उपभोग करते समय दुःख करने की आवश्यकता नहीं है। आप राम की चिन्ता त्याग दें।

राम की बात सुनकर मंत्री विचार में पड़ गया। सोचने लगा-बात सही है। अगर राम लौट चलेंगे तो इनकी अपकीर्त्ति हो सकती है। जो लोग वास्तविकता को नहीं जानते वे भ्रम में पड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त धर्म-पालन की बात का भी क्या उत्तर दिया जाय ? मगर सीताजी के लिए तो कोई प्रश्न ही नहीं है। अगर वह लौट चलें तो क्या हानि है ?

मंत्री राम से कहने लगे-आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है, यह मैं कैसे कहूँ ? किन्तु महाराज ने एक बात और कही है। उन्होंने कहा है कि कदाचित् राम न लौटें तो जैसे-तैसे सीता को लौटा ही लाना। जानकी को न किसी ने वन भेजा है, न कुछ कहा ही है। राज्य के साथ इनका क्या सम्बन्ध है ? इनके लौटने में अपकीर्त्ति की भी कोई संभावना नहीं है। अब इन्होंने वन के कष्टों का भी अनुभव कर लिया है। यह इस

इनके संरक्षण में रहते मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं है।

रामचन्द्र की बात सुनकर सीता कहने लगी— प्रभो ! आपके यह वचन मेरी परीक्षा करने के लिए हैं। आप मेरी कसौटी करना चाहते हैं। वास्तव में स्वामी ऐसे ही कसौटी करने वाले होने चाहिये। पत्नी के नचाने पर बंदर की तरह नाचने वाले स्वामी किस काम के ! लेकिन मेरी भी एक विनय सुन लीजिए। उसके बाद आप जैसी आज्ञा देंगे, वही करूँगी।

हे परम स्नेही प्राणपति ! आप मुझपर गाढ़ स्नेह रखते हैं। आप करुणाकर और विवेकी हैं। इसलिये आप जो कहेंगे, उचित ही होगा। आप अवध में मेरी परीक्षा कर चुके हैं। अब यहाँ भी कर रहे हैं। वास्तव में परीक्षा बार-बार ही की जाती है। कंचन को बार-बार अग्नि में तपाया जाता है। मगर उससे वह खराब नहीं होता-वरन् अच्छा ही होता है। आप जब जहाँ चाहें परीक्षा करें। सीता खोटा सोना नहीं है !

एक बात मैं आपसे पूछती हूं। आप कहते हैं—तू अवध का काम कर, मैं वन का काम करूँगा। तो क्या मैं और आप दो हैं ? क्या शरीर और उसकी परछाई अलग-अलग हैं ? क्या शरीर को छोड़कर परछाई अन्यत्र भेजी जा सकती है ? सूर्य को त्याग कर प्रभा कहां जा सकती है ? चन्द्रमा के बिना चांदनी कहाँ रह सकती है ? मगर यह सब अलग नहीं हैं

करूँगा ? मैं उन्हें अपना मुख नहीं दिखलाना चाहता। अतएव मैं भी अयोध नहीं लौटना चाहता। मुझे अपने साथ रहने की आज्ञा प्रदान कीजिए। यह सेवक भी वन में ही जीवन बिताना चाहता है।

राम ने अनेक युक्तियों से, तर्कों से, यहाँ तक कि आग्रह करके मंत्री को बहुत समझाया। फिर भी वह अयोध को नहीं लौटा। उसने राम की सब युक्तियों का एक ही अकाट्य उत्तर दिया। वह कहने लगा—'बालक को माता-पिता बहुत समझाते हैं, पर वह केवल रोना समझता है। मैं और कुछ नहीं जानता—सिवाय इसके कि या तो आप स्वयं अयोध को लौट चलें या मुझे अपने साथ चलने दें।'

इस प्रकार कहकर मंत्री राम के साथ-साथ आगे चल दिया। चलते-चलते एक गहन जंगल आया और एक अथाह-बनी नदी। राम ने यहाँ ठहर कर मंत्री से कहा—मंत्री, अब आप लौट जाइए। आगे बड़ा कष्ट है। रथ के लिए मार्ग भी नहीं है। इसके अतिरिक्त आपके न लौटने से अयोध में नाना प्रकार की दुश्चिन्ताएँ उठ खड़ी होंगी। ऐसी दशा में घोर अनर्थ होने की सम्भावना है। [illegible] को इस अनर्थ से बचाना आपका कर्तव्य है। कर्तव्य का पालन करना ही मनुष्य-जीवन का सार है। [illegible] कर्तव्य में न्यून [illegible] उपजेगी। [illegible] आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अयोध [illegible] एक-एक घड़ी युग की तरह बीत रहा होगा। आप न

मंत्री का निराश लौटना

———ııı.()ııı———

खड़ा-खड़ा राम की ओर ही निहार रहा था। राम ने मंत्री की यह स्थिति देखी तो वे ज़रा जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर चले। उन्होंने सोचा-जब तक मैं दिखाई देता रहूँगा, मंत्री का दुःख शान्त न होगा।

धीरे-धीरे राम, सीता और लक्ष्मण आंखों से ओझल हो गए। ओझल होने पर अत्यन्त निराश मंत्री ने अवध की ओर ध्यान दिया। मंत्री उस समय अपने आपको बड़े कष्ट में मान रहा था। घोड़े भी अनमने से चल रहे थे। कोई भला आदमी धोखे में शराब पी ले और फिर भान होने पर उसे जैसा पश्चात्ताप होता है, वैसा ही पश्चात्ताप मंत्री को हो रहा था। वह सोचने लगा—मैं खाली रथ लेकर अवध में कैसे प्रवेश करूँगा? प्रजा से, राम की माता से, और महाराज से क्या कहूँगा? भगवन्! मेरे ऊपर कैसा संकट आ गया है। किस मुँह से कहूँगा कि न राम आये और न सीता आई। खाली रथ लेकर दिन के समय अयोध्या में प्रवेश करना असंभव हो जायगा।

मंत्री ज्यों-ज्यों अवध के समीप आता जा रहा था, उसका हृदय क्षुब्ध होता जा रहा था। आखिर अवध आ गया। जब वह आया तो काफी दिन शेष था। उसने अयोध्या से कुछ दूर रथ रुकवाया और वहीं ठहर गया। रात्रि हुई और अन्धेरा फैल गया तो डरता-सा चोर की तरह मंत्री अयोध्या में घुसा और सीधा राजमहल में जा पहुँचा।

मंत्री के अनेक उपाय करने पर भी उसका आगमन छिपा नहीं रहा। छिपता भी तो कब तक ? कुछ लोगों ने खाली रथ को देखा तो सब भाँप गये–राम नहीं आये, सीता भी नहीं आईं ! बात की बात में यह संवाद अयोध्या के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया ! सर्वत्र फिर वही चर्चा होने लगी।

कुछ विशिष्ट लोग राजमहल में पहुँचे और मंत्री से पूछने लगे–कहिए मंत्रीजी, क्या हुआ ? मंत्री ने नीची गर्दन करके उत्तर दिया–अभी हम लोगों का भाग्य ऐसा नहीं है कि राम लौट आएं।

मंत्री दुखित होता हुआ दशरथ के पास पहुंचा। दशरथ ज्ञानी और नीतिनिपुण थे। उन्होंने पहले ही अनुमान कर लिया था कि महापुरुष राम लौटकर आने वाले नहीं हैं ! फिर भी जनता को मालूम हो जाय और भरत राज्य स्वीकार कर ले, इसी उद्देश्य से उन्होंने मंत्री को भेजा था।

मंत्री के पहुंचते ही राजा ने पूछा–कहो, किसे ले आये मंत्रीजी ! राम और सीता दोनों आये हैं या अकेली सीता ?

यह प्रश्न सुनकर मंत्री की जो दशा हुई होगी, उसे कौन [illegible] [illegible] हजार [illegible] ने एक साथ [illegible] [illegible] महाराज [illegible]

[illegible] [illegible]

करो, उन्होंने न लौटकर सूर्यवंश की सन्तान के योग्य ही कार्य किया है। सीता का न आना भी उचित ही है। राम के बिना सीता वैसी ही है जैसी धर्म के बिना माया। इसलिए शोक त्याग कर भरत से कहो कि हम अपनी ओर से सब संभव प्रयत्न कर चुके हैं। राम लौटने वाले नहीं। इसलिए अब तुम्हीं सिंहासन पर बैठो। प्रजा का पालन करो और अपने पिता को धर्म-कार्य में लगने दो।

हाँ, मैयाँ! देखो, एक बात और है। तुम अगर जरा भी दुखी होओगी तो भरत का दुःख अधिक उमड़ पड़ेगा। इसलिए तुम तनिक भी उद्विग्न मत होओ। ऐसा न करोगी तो राज्यसंचालन में भरत की सहायता कैसे करोगी? राम गुरु दुखी नहीं हैं। मैं उनका पिता भी दुखी नहीं हूँ फिर तुम्हीं क्यों दुखी होती हो? प्रसन्न रहकर अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करें, यही वांछनीय है।

कर्त्तव्य की कसौटी

राजा और प्रजा के द्वारा माँग ही नहीं वरन् अत्यन्त आग्रह करने पर भी राम और सीता का वन से न लौटना, अब कोई राज्य संभालने वाला भी न होने पर भी तत्काल [illegible] का दीक्षा लेने के लिए तैयार होना और सब के समझाने-बुझाने पर भी भरत का राज्य को स्वीकार न करना विचित्र परिस्थिति है। इस परिस्थिति पर ऊपर ऊपर से विचार करने

सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। कहने को तो कैकेयी भी कहती है कि कुछ भी हो, मैंने जो वचन माँगा है वह पूरा होना चाहिए। फिर भी उसका कार्य सत्याग्रह नहीं कहला सकता। साधारण जनता सत्याग्रह और दुराग्रह का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझती। इसी कारण कभी सत्याग्रह को दुराग्रह और दुराग्रह को सत्याग्रह समझ लेती है। स्वार्थ, ईर्षा, द्वेष अथवा अमर्ष से, दूसरे को हानि पहुँचाने के विचार से जो आग्रह किया जाता है वह सत्याग्रह की कोटि में नहीं गिना जा सकता। सत्याग्रह वही है जो एकान्ततः दूसरे के हित के उद्देश्य से, किसी को हानि पहुँचाने की भावना न रखते हुए किया जाय। कैकेयी ने सत्याग्रह की यह आवश्यक शर्त पूरी नहीं की। तुलसीदास के कथनानुसार उसे कौशल्या के प्रति ईर्षा हो गई थी। राम के प्रति उसके मन में दुर्भावना आ गई थी। वह राजमाता का गौरव स्वयं प्राप्त करने की स्वार्थभावना से ग्रस्त हो गई थी। राम के प्रति उसके मन में दुर्भावना आ गई थी। जैनरामायण में कैकेयी को यद्यपि इस रूप में चित्रित नहीं किया गया है तथापि उसके वर्णन से भी यह बात स्पष्ट है कि भरत के प्रति ममता के कारण ही उसने राम के अधिकार का अपहरण किया। न्याय के अनुसार और परम्परा के लिहाज से भी राम ही राज्य के अधिकारी थे। किन्तु कैकेयी ने ममता के वशीभूत होकर न्याय का विचार नहीं किया। न्याय का विचार जहां नहीं रहता वहां सत्याग्रह नहीं

भरत की पुनः अस्वीकृति

——::::()::::——
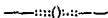
मंत्री अपने साथ कुछ विशिष्ट और प्रभावशाली व्यक्तियों को लेकर फिर भरत के पास पहुँचा। मंत्री ने अपने वन जाने का वृत्तान्त भरत को सुनाया। उसने कहा-राम को अयोध्या लौटने के लिए खूब समझाया, आग्रह किया, किन्तु वे किसी भी प्रकार लौटने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा है कि मैं और भरत दो नहीं हैं। दो मानने से ही यह गड़बड़ उत्पन्न हुई है। उन्होंने आपको यह भी कहा है कि आप राज्य स्वीकार कर लें और ऐसा कार्य करें, जिससे माता-पिता को कष्ट न पहुँचे।

भरत ने उत्सुकता और शान्ति के साथ मंत्री की बात सुनी। राज्य स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव भी सुना। उसके बाद वह कहने लगे-'राम को भेजने का अपराधी मैं ही हूँ। मैं ही पापी हूँ।'

लोग अपराधी होते हुए भी अपने को निरपराध सिद्ध करने की भरसक चेष्टा करते हैं, मगर एक भरत हैं जो साक्षात्

श्रेणी के पुरुष हैं, यह बात उनके वन गये बिना संसार को कैसे ज्ञात होती? उनका तुम्हारे ऊपर हार्दिक प्रेम है या नहीं, यह बात कैसे समझ में आती? इसी प्रकार तुममें राज्य करने की योग्यता है या नहीं, यह भी कैसे पता चलता? यह सब मेरे वर मांगने से स्पष्ट हो गया। मुझे लोग युग-युग में कोसते रहेंगे तो भले कोसें, मगर राम का यश बढ़ाने का श्रेय विद्वान् मुझे ही देंगे। मैंने राम का स्वरूप जगत् के सामने खोल कर रख दिया है। खैर कुछ भी हो। फिलहाल तुम मुझे अपराधिनी समझते हो तो समझो। यह अपनी-अपनी समझ की बात है। लेकिन महाराज तो अपराधी नहीं हैं। उनकी धर्मसाधना में बाधा डालने से क्या लाभ होगा? इसलिए मैं फिर कहती हूँ कि तुम राज्य स्वीकार कर लो।

अब भरत से नहीं रहा गया। वह कहने लगे—माता! तुमने जो कुछ किया है, वह सब मेरा ही पाप है। लेकिन अब उस पाप को और बढ़ाने से क्या लाभ है? मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करूँगा। राजसिंहासन पर बैठने से प्रायश्चित्त नहीं होगा। उसके लिए कोई और उपाय करना होगा।

तुम अपनी मांग का महत्त्व बतलाती हो मगर मेरे हृदय के कांटे के अतिरिक्त तुमने मांगा ही क्या है? तुम्हें न्याय धर्म और कोई-कुछ भी नहीं चाहिए। तुम अपने बेटे को राजा बनाकर राजमाता बनना चाहती हो और इसके लिए सभी कुछ त्यागने को तत्पर हो। तुमने न्याय की हत्या की

माता ! अगर तुझे राजमाता बने बिना चैन नहीं पड़ता था तो मुझसे कहती तो सही। राजमाता बनने के लिए राम का राज्य छीनने की क्या आवश्यकता थी ? मैं तो अनेक राज्य स्थापित करने की क्षमता रखता हूँ। भरत इतना असमर्थ नहीं था कि तुझे राम का राज्य छीनना पड़ता। मैं बिना युद्ध किए भी राज्य प्राप्त कर सकता था और भुजाओं में युद्ध करने के लिए भी बल था। मगर तुमने राज्य के लिये ऐसा कर्म किया है कि सारा संसार मुझे धिक्कार रहा है। माता ! तू जरा ऊपर सूर्य की ओर तो देख, यह क्या कह रहा है ? यह लाल होकर कह रहा है कि तूने सूर्यवंश को कलंकित कर दिया ! यह कहता है मुझे राहु के द्वारा जो कलंक लगता है वह तो जल्दी ही मिट जाता है परन्तु तूने सूर्यवंश को ऐसा कलंक लगाया है जो कभी नहीं मिटने का। तूने ऐसा अमिट कलंक लगाया है और फिर कहती है कि मैंने क्या बुरा किया है ! मैं ऐसा राज्य नहीं लूँगा। धिक्कार है ऐसे राज्य को और इस स्वार्थमय संसार को।

कैकेयी से इस प्रकार कहते-कहते भरत का हृदय भर गया और आँखों से आँसू बहने लगे। उस समय शत्रुघ्न भी वहीं खड़े थे। वे कैकेयी से कहने लगे-माता ! आपने भ्राता की बात सुनी है। उस पर आप भलीभाँति विचार कीजिए। सुबह का भूला सांझ को घर आ जाय तो भूला नहीं कहलाता। अब भी समय है, भूल हो जाना बड़ी बात

नहीं है मगर विवेकी जन हठ छोड़कर उसे सुधार लेते हैं। इसी में कल्याण है। अपनी भूल को सुधार लेना बिगड़ी बात बनाना है। समय निकलने पर फिर कुछ न बनेगा।

माता! आप राज्य को भोग-सामग्री समझती हैं। अगर हम भी ऐसा ही मान लें तो हमारे लिए और प्रजा के लिए यह रोग बन जायगा। फिर सभी लोग यह समझेंगे कि हमारा जन्म भोग के लिए हुआ है, धर्म के लिए नहीं। वास्तव में मनुष्य का जन्म भोग भोग कर पुण्य क्षीण करने के लिये नहीं है। बल्कि पुण्य और धर्म की वृद्धि के लिए है। पिताजी में धर्मभाव न होता तो वे आपको वर क्यों देते? राम में धार्मिकता न होती तो वह राज्य क्यों त्यागते? पिताजी धर्म के बिना दीक्षा क्यों लेते? लक्ष्मण धर्मका महत्व न समझते तो रामके साथ अकारण वन क्यों जाते? माता! इन सब धार्मिक कार्यों पर भरत को राजा बनाकर आप पानी फेरना चाहती हो। मेरा नाम शत्रुघ्न है। शत्रु को दंड देने के लिए आपने मेरा यह नाम रक्खा है। लेकिन आज मैं स्वयं अपने को अपराधी और सूर्यवंश का कलंक मानता हूं। इसलिए मेरी यह तलवार लो और मुझे तथा भरत भैया को यथेष्ट दंड दो।'

भरत और शत्रुघ्न की बातें सुनकर कैकेयी को कुछ-कुछ होश हुआ। वह भ्रमित-सी होकर सोचने लगी-यह सब क्या है! मैंने क्या सचमुच ही अनर्थ किया है! मैंने जिसके लिए यत्न किया, उनकी मति न्यारी है। राम, लक्ष्मण,

भरत और शत्रुघ्न की मति एक है। चारों भाई अभिन्न हृदय हैं। सब का हृदय एक है। मैं क्या इनके हृदय के टुकड़े कर रही हूँ ? मैं कैसी पापिनी हूँ कि आज अपने पति, पुत्र और प्रजा-सब की आंखों में गिर गई हूँ। हाय ! मैं कहीं की नहीं रही ! मेरे नाम पर अमिट कलंक की कालिमा पुत गई।

शत्रुघ्न की बात समाप्त होने पर भरत कहने लगे-माता ! तुमने राज्य मांग लिया है तो तुम जानो। चाहे स्वयं राज्य करो, चाहे किसी को भी दे दो। मुझे यह नहीं चाहिए। मैं उसी ओर जाऊँगा जिस ओर राम और लक्ष्मण गये हैं।

सत्याग्रह की विजय

इस प्रकार सत्याग्रह और दुराग्रह के बीच में लम्बा संघर्ष चला। पहले दुराग्रह ने सत्याग्रह को खूब तपाया किन्तु सत्याग्रह के सामने दुराग्रह की एक न चली। वह चूर-चूर हो गया। भरत के सत्याग्रह ने कैकेयी के दुराग्रह को पराजित कर दिया। कैकेयी पश्चात्ताप की आग में झुलसने लगी। उस की बुद्धि पलट गई। वह सोचने लगी-अब मुझे क्या करना चाहिए ? मुझे क्या पता था कि राम के बिना काम नहीं चल सकता। मैंने सोचा था-मेरा एक पुत्र राजा और दूसरा प्रधान बन जाएगा। मगर मेरा यह भारी भ्रम था। इस भ्रम का निराकरण पहले हो गया होता तो यह नौबत न आती ! अब मैं न इधर की रही न उधर की। सभी तरफ घोर मुसीबत है !

लेकिन अब भी समय है । अब भी बिगड़ी बात बन सकती है । महाराज के चरणों में गिरकर क्षमा मांग लूं और राम को मना लाऊं तो सब सुधर जायगा । अब यही करना उचित है ।

कैकेयी की आत्मग्लानि

कैकेयी घबराई हुई राजा दशरथ के पास पहुंची । उसने गिड़गिड़ा कर कहा—महाराज ! मेरा अपराध हुआ है । मैं मोह में पड़ गई थी । मोह के कारण ही यह भयानक भूल कर बैठी हूं । मैंने कुबुद्धि के कारण राम और भरत में भेद किया । पर अब मालूम हुआ कि उनमें भेद हो ही नहीं सकता । भेद करने की मेरी कुचेष्टा असफल हुई है । मुझे इस असफलता के लिए कोई खेद नहीं है । खेद इस बात का है कि दुर्बुद्धि आई क्यों और मैंने यह कुचेष्टा की क्यों ? अपनी असफलता पर तो बल्कि संतोष है । मेरा भाग्य अच्छा था कि मेरी कुचेष्टा सफल नहीं हुई । सफल होती तो युग-युग की जनता जब आपका और राम का यश गाती तो मेरे नाम पर थूके बिना न रहती । इस प्रकार मेरा वर मांगना मेरे लिए शाप हो गया और मेरी असफलता ही वर बन गई है । मैं अपने कृत्य के लिए अन्तःकरण से पश्चात्ताप करती हूं । आपको मैंने बड़ी व्यथा पहुंचाई है । आप उदार हैं । क्षमा देने वाले क्षमा भी दे सकते हैं । कृपा करके क्षमा कीजिए । आपका क्षमादान वर-दान से भी अधिक आनन्द-

लोक में कहीं पर भी स्थान न रहा। जो राम आपको,मुझको, भरत को और सारी प्रजा को प्रेम करते हैं, मैं उन्हीं के अनिष्ट का कारण बन गई! सीता जैसी साधुशीला सती को जाते देखकर भी मेरा हृदय न पिघला! इतना भयानक पाप और कौन कर सकता है? जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर मैं ने यह सब किया था, वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। आज यह सोच-कर मुझे खेद नहीं, प्रसन्नता है। भरत ने राज्य स्वीकार कर लिया होता तो प्रायश्चित्त करने की प्रेरणा ही मेरे अन्तःकरण में न जागी होती। मेरा पाप बढ़ जाता और मैं अन्त तक गिरती ही चली जाती।

देवी कौशल्या और सुमित्रा को मैं बुरी समझती थी। मुझे उन पर अनेक प्रकार के संदेह थे। लेकिन वे कितनी सरल-हृदया हैं, कितनी उदार हैं, यह मुझे अब जान पड़ा है। मैं अब समझी हूँ कि कौशल्या से उत्पन्न पुत्र ही इस प्रकार राज्य त्याग कर वन जा सकता है और सुमित्रा का सपूत ही अपना क्रोध दबाकर तथा अपनी प्रचण्ड वीरता को रोक कर चुपचाप अपने ज्येष्ठ भ्राता की सेवा के लिए उसके साथ जा सकता है। मेरे हृदय का पाप राम और लक्ष्मण ने नष्ट कर दिया।'

इस प्रकार कहकर कैकेयी, कौशल्या और सुमित्रा से कहने लगी—मेरी बहिनो! मैं अपना मुंह दिखाने के योग्य नहीं हूँ। मैंने आपको पुत्र-विछोह का दारुण दुख पहुंचाया

है। मैं तुमसे क्षमायाचना करती हूं। मैं ने पहले भी तुम्हारा सच्चा स्वरूप समझा था और आज फिर समझ रही हूं। बीच में मैं मूढ़ बन गई थी। आपकी सहिष्णुता, उदारता और वत्सलता देखकर मेरा पाप भाग रहा है।

मैं अब वन के लिए प्रस्थान कर रही हूं। आप सब अपनी शुभ-कामनाएँ मेरे साथ रखिए, जिससे मैं अपने प्रयत्न में सफलता पा सकूँ। मैं राम से अनुनय-विनय करूँगी। उनका हाथ पकड़ कर खींच लाऊंगी। उन्हें लाकर ही छोड़ूँगी।

कैकेयी की आत्मग्लानि देखकर दशरथ सोचने लगे—मैं कहता था कि भरत राज्य स्वीकार न करके मेरी दीक्षा में रुकावट डाल रहा है, पर उसके कार्य का महत्व अब मेरी समझ में आया। भरत ने राज्य ले लिया होता तो रानी का सुधार होना संभव नहीं था और रानी के न सुधरने से यह वंश दूषित हो जाता।

कैकेयी का वन-गमन

———:::():::——

राम आत्मा के सिवाय और पदार्थों को अस्थिर मानते थे। इसी कारण वह किसी भी बाह्य पदार्थ में आसक्त नहीं थे। वन जाते समय की उनकी छवि का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी ने कहा है—

> प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकत-
> स्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ।
> मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे,
> सदाऽस्तु सा मञ्जुलमंगलप्रदा ॥

अर्थात्—जिनके मुख-कमल की शोभा राज्याभिषेक का समाचार पाकर प्रसन्न नहीं हुई और वन-वास के कठोर दुःखों से म्लान नहीं हुई, वह राम की मुखश्री मेरे लिए मंगलदायिनी हो।

राम राज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न और वन-वास के समाचार से अप्रसन्न नहीं हुए। इसका कारण यही है कि वह सांसारिक पदार्थों में आसक्त नहीं थे। उनकी दृष्टि में सभी

पदार्थ क्षणिक हैं। संसार की वस्तुओं को स्थिर समझने वाला राज्य पाने की खुशी से फूल कर कुप्पा हो जाता है वन में भटकने की बात सुनकर सिकुड़ जाता है। वह राज्य को इष्ट और वन-वास को अनिष्ट समझता है। मगर राम की मनोवृत्ति ऐसी बनी हुई थी कि राज्यभोग और वन-वास उनके लिए समान-सा था। जो पुरुष आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु में ममत्वभाव धारण करता है, समझना चाहिए, उसके अन्तःकरण में आत्मा के प्रति दृढ़ आस्था ही उत्पन्न नहीं हुई। राम की आस्था आत्मा के विषय में समीचीन थी और इसी कारण सुख-दुख उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते थे।

राम के विचार की निर्मलता का प्रभाव कैकेयी पर कैसे न पड़ता? इसी प्रभाव के कारण कैकेयी की बुद्धि निर्मल हो गई। वह राम को लाने के लिए रवाना हुई। प्रजाजनों में से बहुत-से लोग साथ जाने के लिए तैयार हुए, मगर उन्हें किसी प्रकार समझा दिया गया। कैकेयी, भरत और मंत्री को साथ लेकर, रथ पर सवार होकर वन की ओर चल दी।

रास्ते में रानी अनेक संकल्प—विकल्पों की उलझन में उलझी रही। कभी सोचती—अगर राम ने आना स्वीकार न किया तो मैं अयोध्या में कैसे मुख दिखलाऊंगी? लोग मुझे अकेली लौटती देखकर क्या सोचेंगे? क्या कहेंगे? शायद लोग यह भी कह दें कि इसके हृदय में कपट है!

कोई कहेगा—पहले तो राम को वन भेज दिया और अब

मनाने चली थी ! भला राम अब कैसे लौटते !

रानी कभी पश्चात्ताप करने लगती—मेरे समान अभागा और कौन होगा, जिसे राम प्रिय न लगे हों ? मैंने राम जैसे नर-रत्न को अवध से उसी प्रकार बाहर निकाल दिया जैसे पागल आदमी किसी अमूल्य रत्न को फेंक देता है। लेकिन अब गई-गुजरी पर विचार करने से क्या लाभ है ?

कभी रानी विचार करने लगती—राम, लक्ष्मण और सीता मुझे किस रूप में दिखाई देंगे ? जब मैं पहुँचूँगी, वे क्या कर रहे होंगे ? मुझे देखकर क्या विचार करेंगे ? लक्ष्मण मुझे खरी-खोटी सुना दे तो क्या आश्चर्य है ! मैं किस प्रकार उनसे अयोध्या लौटने के लिए कहूँगी ? सुकुमारी सीता इस भया-वने वन में किस प्रकार दिन काटती होगी ? अगर राम अयो-ध्या लौटने को तैयार हो जाएँगे तो मेरे दोष का प्रायश्चित्त हो जायगा और अयोध्या में नवीन जीवन आ जाएगा। प्रजा अपने बीच से गये हुए राम जैसे रत्न को पाकर निहाल हो जायगी।

इस प्रकार मन ही मन विचार करती हुई अनमनी रानी कैकेयी, भरत और राजमंत्री के साथ चली जा रही थी। भाँति-भाँति के पन्य दृश्य कहीं सुन्दर और कहीं भयावने थे। पर कैकेयी भूत और भविष्य की चिन्ताओं में ऐसी निमग्न थी कि वर्त्तमान उसके सामने कुछ था ही नहीं। वन का कोई दृश्य उसके चित्त को प्रफुल्लित या कम्पित नहीं कर पाता था।

चलते-चलते भरत ने वन के एक स्थान को शान्त और प्रसन्न देखकर अनुमान किया कि राम का आवास यहीं कहीं होना चाहिए। इस स्थान के वृक्ष फलों से और फूलों से समृद्ध हैं। परस्पर वैर रखने वाले जन्तु भी यहाँ भाई की तरह प्रेम से रहते हैं। यह सब राम का ही प्रभाव होना चाहिए।

भरत ने मंत्री से कहा—प्रभु यहीं कहीं होने चाहिए।

मंत्री ने भरत का समर्थन किया। उसने कहा—आपका अनुमान सत्य है। मैंने पहले भी राम का ऐसा ही प्रभाव देखा था। जान पड़ता है राम यहीं समीप ही होंगे। इस प्रकार विचार कर वे राम की खोज करने लगे।

इधर सीता ने भरत के सैन्य चलते हुए रथ से उड़ती हुई धूल देखकर सोचा—यह क्या है? वह कुछ भयभीत हो गई। उस समय राम और लक्ष्मण सो रहे थे और सीता जाग रही थी। सीता ने सोचा—यद्यपि सोते को जगाना उचित नहीं है लेकिन संकट की संभावना होने पर ऐसा करना अपराध नहीं है। अतएव लक्ष्मण को जगाकर धूल दिखा देनी चाहिए, जिससे वह सावधान हो जाएँ। सीता ने ऐसा ही किया। लक्ष्मण ने जागकर उड़ती धूल देखी और साथ ही ध्वज की पताका भी उनके दृष्टिगोचर हुई। यह देख लक्ष्मण ने विचार किया - भरत [illegible] दल से ससैन्य हम पर चढ़ाई करने आया है? [illegible] राम को निष्कंटक बनाना चाहते हैं। पर भरत [illegible] यह भरत की

क्या, सारा संसार संग्रामभूमि में मेरे सामने नहीं ठहर सकता। देखते-देखते ही मैं भरत का और उसकी सेना का संहार कर डालूँगा।

अब राम भी जाग चुके थे। लक्ष्मण को इस प्रकार वीरों के योग्य तेज से भरा हुआ देखकर राम ने कहा-लक्ष्मण, भरत पर तुम्हारा संदेह करना यथार्थ नहीं है। इस प्रकार का संदेह करने में भरत का दोष नहीं है। यह तुम्हारे उग्र स्वभाव का ही दोष है। भरत के हृदय में इस प्रकार का पाप होना संभव नहीं है। पृथ्वी स्थिरता को, समुद्र मर्यादा को और चन्द्रमा शीतलता को छोड़ दे फिर भी भरत अपनी मर्यादा नहीं छोड़ सकता। भरत अपना धर्म नहीं छोड़ेगा। भरत के चित्त में पाप आने की संभावना ही नहीं की जा सकती। तुम्हारा संदेह वृथा है।

इस प्रकार राम के समझाने पर लक्ष्मण शान्त हुए। भरत, राम की ओर बढ़े और राम, लक्ष्मण तथा सीता भरत की ओर चल पड़े।

ममान दारुण प्रतीत होती थी। सर्वत्र शोक और चिन्ता का वायु-मंडल बना रहता। यह दशा देखकर महारानी कैकेयी से नहीं रहा गया। बिना किसी की प्रेरणा ही एक दिन उन्हों ने भरत से कहा—

> पुत्र ! राज्यं त्वया लब्धं प्रणिताखिलराजकम् ।
> पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते ।
> विना ताभ्यां विनीताभ्यां किं राज्यं का सुखासिका ?
> का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्तता ? ॥
> राजपुत्र्या समं बालौ क्व तौ यातौ सुखैषितौ ?
> विमुक्तवाहनौ मार्गे पाषाणादिनिराकुले ॥
> मातरौ दुःखिते एते तयोर्गुणसमुद्रयोः ।
> विरहे माऽऽपतां मृत्युमजस्रपरिदेविते ॥
> तस्मादानय तौ क्षिप्रं समं ताभ्यां महासुखः ।
> सुचिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते ॥
> व्रज तावत्त्वमारुह्य तुरंगं जातरंहसं ।
> आगजाम्यहमप्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥

बेटा ! तुम्हें राज्य प्राप्त हो चुका और तुमने सब राजाओं को अपने सामने नत-मस्तक भी कर लिया है, लेकिन राम और लक्ष्मण के अभाव में यह लेश मात्र भी शोभा नहीं देता। राम और लक्ष्मण सरीखे विनीत पुत्रों के अभाव में यह राज्य तुच्छ और निस्सार है। उनके बिना किसी को चैन

नहीं मिल सकता। सभी दुखी हैं। सारा देश शोभाहीन हो गया है, जैसे अवध की सारी शोभा उन्हीं के साथ चली गई है। उनके निर्वासित रहते तुम्हारे सदाचार में भी बट्टा लगता है। लोग सोचते होंगे—बड़े भाई को देश से बाहर निकाल कर भरत आप राजा बन बैठा है।

कदाचित् इस बदनामी की उपेक्षा भी कर दी जाय, तो भी सुख में पले पुसे और बड़े हुए दोनों बालक—राम और लक्ष्मण सुकुमारी राजकुमारी सीता के साथ कहाँ भटकते फिरेंगे? उनके पास कोई सवारी नहीं है। वन का मार्ग कंकरों पत्थरों और कांटों से व्याप्त है। ऐसे बीहड़ रास्ते पर वे पैदल कैसे चलते होंगे?

इसके अतिरिक्त उनकी माताएँ भी अत्यन्त दुखी हैं। अपने पुत्र पर माता का स्नेह होता ही है। और जब पुत्र अत्यन्त गुणी हों—गुणों के सागर हों तो उन पर विशेष स्नेह होना स्वाभाविक ही है। ऐसे पुत्रों का वियोग होना वास्तव में बड़े ही दुःख की बात है। बहिन अपराजिता और सुमित्रा निरन्तर आंसू बहाती रहती हैं। अगर यही हालत रही तो वे प्राण त्याग देंगी। यह बड़ा अनर्थ होगा।

इसलिए तुम उन्हें ले आओ। उनके साथ रहकर पृथ्वी का चिरकाल तक पालन करो। इसी में कल्याण है। यही करना चाहिए। ऐसा करने पर ही राज्य भी शोभा देगा।

हे सुपुत्र! तू तेज चलने वाले घोड़े पर सवार होकर

रवाना हो जा। मैं भी तेरे पीछे-पीछे आती हूँ।

माता का रुख बदला हुआ देखकर भरत की प्रसन्नता का पार न रहा। उन्हें और चाहिए ही क्या था? भरत तत्काल तैयार हो गये। एक हजार घोड़े अपने साथ लेकर वह उसी ओर रवाना हुए जिस ओर राम गए थे। सीता के कारण धीमे-धीमे चलते हुए राम और लक्ष्मण बहुत दिनों में जहाँ पहुँचे थे, भरत ऐसी तेजी से चले कि छह दिनों में वहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर और राम की खोज करके वे राम के पास पहुँचे।

जब भरत पहुँचे तब राम एक सरोवर के किनारे ठहरे हुए थे। ज्यों ही भरत की दृष्टि राम पर पड़ी, वह घोड़े से उतर पड़े। पैदल चल कर राम के सामने गये। राम और लक्ष्मण ने भरत को आते देखा तो वे भी प्रेम से विह्वल होकर भरत की ओर बढ़े। बीच ही में समागम हो गया। भरत राम के पैरों में गिर पड़े। स्नेह और भक्ति की अधिकता के कारण वह मूर्छित हो गये। राम ने बड़े प्रेम से भरत को उठाया और सावचेत किया।

जैन-रामायण के वर्णन में पहली विशेषता यह है कि कैकेयी को वैसे निष्ठुर रूप में चित्रित नहीं किया गया है, जैसा कि तुलसी-रामायण में। इसके अतिरिक्त भरत को देखकर लक्ष्मण को जो आशंका हुई बतलायी गई है, उसमें भाइयों का परस्पर अविश्वास होना प्रगट होता है। मगर हम

होते हैं कि भरत जैसे साधु-स्वभाव के भाई पर इस प्रकार की आशंका करने का कोई कारण नहीं था। कैकेयी के मन में भेदभाव अवश्य उत्पन्न हुआ था, मगर भरत के किसी भी व्यवहार से यह नहीं जाना गया था कि उन के दिल में राम के प्रति लेश भर भी अप्रीति है। ऐसी स्थिति में लक्ष्मण की आशंका अस्वाभाविक ही कही जा सकती है। इतना ही नहीं, इससे चारों भाइयों के अविच्छेद्य स्नेहसंबंध का आदर्श, जो रामायण का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, खंडित हो जाता है। लेकिन तुलसीदासजी ने लक्ष्मण की आशंका का वर्णन संभवतः उनकी उग्र प्रकृति का दिग्दर्शन कराने के लिए किया है। इसमें संदेह नहीं कि राम अगर हिम की भाँति शीतल थे तो लक्ष्मण आग की तरह गरम थे। इसी कारण तुलसी-रामायण के अनुसार हमने उक्त घटना का उल्लेख कर दिया है।

मेरा उद्देश्य रामायण की कथा सुनाना नहीं है किन्तु रामायण की कथा का आधार लेकर उससे मिलने वाली शिक्षा की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करना है। इसीलिए मैंने बहुत-सी घटनाओं का परित्याग भी कर दिया है और जिस किसी राम-कथा में जो बात शिक्षाप्रद दिखाई दी, वह ग्रहण कर ली है। आदि से अन्त तक की पूरी राम-कथा जानने की इच्छा रखने वालों को अन्य ग्रंथ देखने चाहिए।

राम और भरत का मिलाप

——::::()::::——

राम बड़े प्रेम के साथ भरत से मिले। भरत ने उन्हें प्रणाम कहा। राम ने भरत को अपने गले से लगा लिया। भरत की आँखें अश्रु बहा रही थीं। राम जब वन के लिए रवाना हुए थे तो चिन्ता और विषाद के कारण भरत रोये थे लेकिन इस समय विशुद्ध भ्रातृप्रेम ही उनके रुदन का कारण था।

राम ने कहा-भरत! कठिन से कठिन विपत्ति आ पड़ने पर भी पुरुषों को रोना शोभा नहीं देता। धैर्य के साथ साथ परिस्थितियों का सामना करना चाहिए। रोने से कठिनाई कम नहीं होती वरन् अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि उसका सामना करने का साहस जाता रहता है। हम लोग कई दिनों में आराम में मिले हैं। यह समय हर्ष का है। रोने का क्या कारण है?

भरत-हे भ्राता! आप मुझे आश्वासन देते हैं, मगर मेरे जैसे पापी को धैर्य हो तो कैसे? आप मुझ अभागे को अयोध्या में छोड़कर चले आये हैं। ऐसी दशा में मैं संतोष कैसे पा सकता हूँ? आपके वन आने पर सिंह, सर्प आदि

तो शक्तिसिंह उनकी रक्षा करने को दौड़ पड़े। राणा ने समझा भाई शत्रुता का बदला लेने के लिए मुझे मारने आया है। मगर शक्तसिंह ने कहा—मैं आपको मारने नहीं आया हूँ, मगर रक्षा करने आया हूँ। मुझे ऐसा जघन्य पातकी न समझिये कि मैं संकट में पड़े भाई की सहायता न करके हत्या करने को उद्यत हो जाऊँ। अन्ततः शक्तसिंह और राणा प्रतापसिंह का प्रेमपूर्ण मिलाप वैसा ही हुआ जैसा भरत और राम का हुआ था।

सच्चा भाई अपने भाई के प्रति सदैव स्नेह ही रक्खेगा। अगर कोई यह समझता है कि मेरे प्रेम करने पर भी मेरा भाई मुझसे प्रेम नहीं करता, तो ऐसा समझने वाले को अपना हृदय टटोलना चाहिए। अगर उसके हृदय में मैल नहीं है तो भाई के दिल में भी मैल नहीं टिक सकता।

भरत कहते हैं-प्रभो! आपके वन-आगमन से सारी प्रजा दुखी है। वह आपके लौटने की प्रतीक्षा में व्याकुल है। आपके चले आने से मेरे सिर पर बड़ा कलंक लग गया है। यह कलंक आपके लौटे बिना नहीं धुल सकता। अगर आप मुझ पर कृपा रखते हैं तो मेरी निष्कलंकता सिद्ध करने के लिये अयोध्या पधारिये।'

राम—अनुज भरत! तुम्हें देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। तुम्हारा प्रेम और विनय देख कर मुझे रोमाञ्च हो आता है। तुमने जो कुछ कहा है वह तुम्हारे योग्य ही

है। मैंने रुष्ट होकर अयोध्या का परित्याग नहीं किया है और न अब रुष्ट हूँ। पिताजी की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए मैं स्वेच्छा से यहाँ आया हूँ। ऐसी दशा में तुम्हारे सिर दोष मढ़ने वाले लोग भूल करते हैं। जो तुम्हें पहचानते हैं, वे कभी दोषी नहीं ठहरा सकते। तुम्हारा सद्व्यवहार ही तुम्हारी निर्दोषता का प्रमाण है।

अब रही मेरे लौटने की बात। यह सत्य है कि मेरे लौटने से तुम्हें प्रसन्नता होगी, माता कैकेयी का भी अन्तर्दाह मिट जायगा और प्रजा को भी संतोष होगा। लेकिन बन्धु, ऐसा करने से सूर्य वंश पर अमिट कलंक लग जायगा। जैसे त्यागे हुए राज्य को फिर ले लेने से पिताजी की निन्दा होगी, उसी प्रकार मेरे अवध चलने से मेरी निन्दा होगी। लोग यही कहेंगे कि पिता ने भरत को राज्य दिया था, किन्तु पिता के दीक्षा लेते ही राम ने लौटकर भरत से राज्य ले लिया!

मोह से ग्रस्त होकर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का सही निर्णय नहीं होता। मध्यस्थ भाव धारण करके यह निर्णय करना चाहिए। मेरा अवध को लौटना हितकर न होगा बल्कि हानिप्रद होगा। इसलिए तुम आग्रह मत करो और प्रजा का पालन करो।

इसी समय कैकेयी आ पहुँची। उन्हें देखकर जानकी और लक्ष्मण के साथ राम सामने गये। सब ने उन्हें प्रणाम किया। कैकेयी ने आँसू बहाते हुए सब को आशीष दी।

कैकेयी का पश्चाताप

—:::():::—

कैकेयी को आते ही मालूम हो गया कि राम अयोध्या लौटने को तैयार नहीं हो रहे हैं। तब वह सोचने लगी—'अपराध सारा मेरा ही है। जब तक मैं उसका प्रायश्चित नहीं कर लूँगी तब तक राम कैसे लौटेंगे? यह सोच कर वह बोली—'वत्स राम! मोह की शक्ति बड़ी प्रबल है। उसने मुझे मूढ़ बना दिया था। मोह के वश होकर ही मैंने यह अपराध कर डाला है। अब मेरी आँखें खुल गई हैं। भरत के लिए राज्य माँगकर मैं तुम्हारे वन-वास का कारण बन गई, इसका मेरे अन्तःकरण में बहुत पश्चात्ताप है। तुम्हारे बिना अयोध्या सूनी है। अब दूसरा विचार मत करो और शीघ्र ही अयोध्या लौट चलो।

तुम्हारे वन आने से मैंने तुम्हें, लक्ष्मण को और सीता को ही नहीं गँवाया, भरत को भी गँवा दिया है। भरत का अब मेरे ऊपर वैसा स्नेह नहीं रहा है। उसकी चेष्टाएँ जड़वत् हो रही हैं। वह रात-दिन उदास और संतप्त रहता है। प्रजा के पालन में उसका चित्त नहीं लगता। अगर तुम भरत को

मेरा कल्याण करना चाहो और उसमें पहले जैसी निश्चिन्तता देखना चाहो तो अवध को लौट चलो। तुम्हारे लौटने से ही भरत बचा रह सकता है। मैंने भरत के लिए अपयश सहन किया, धिक्कार का पात्र बनी, स्वर्ग त्याग कर नरक जाना स्वीकार किया, फिर भी भरत मेरा नहीं बना। तुम्हारी राज्य-प्राप्ति से कोई नाराज़ नहीं था। नाराज़ थी तो अकेली मैं और वह भी भरत की भलाई सोच कर। इतना करने पर भी आज देखती हूँ कि भरत में मानो जान ही नहीं है। जैसे जंगल से पकड़ कर लाया हुआ हिरन नगर में सशंक और भयभीत-सा रहता है, भरत भी वैसा ही बना रहता है। वह सारे संसार को भय और शंका की दृष्टि से देखता है। अतएव तुम अयोध्या लौटकर भरत को निःशंक और निर्भय बनाने के साथ उसे जीवित कर दो।

कैकेयी पहले तो शुद्ध हीरे के समान थी किन्तु मोह ने उसे घेर लिया था। मोह का वेग जब कम हुआ तो वह फिर अपने असली रूप में आ गई। इसी कारण वह राम के पास पहुँच कर अपने कृत्य का पश्चात्ताप कर रही है।

कैकेयी कहती है—'चन्दन शीतलता देने वाली वस्तु है, लेकिन मेरे लिए वह भी संताप देने वाला सिद्ध हुआ। चन्दन में ताप देने का गुण होता तो वह सभी को ताप पहुँचाता। मगर वह सिर्फ मुझे ही संताप दे रहा है। अत-

-पष्ट स्पष्ट है कि यह मेरे ही शरीर की गर्मी है, चन्दन की नहीं।

कोई सम्माननीय व्यक्ति अच्छे वस्त्र और आभूषण पहने हो लेकिन जिससे वह सम्मान पाने का अधिकारी है, उससे सम्मान न पाकर अपमान पाये तो उस समय उसे अपने गहने-कपड़े भी बुरे मालूम होते हैं। अपमान के कारण उसे अपनी सजावट दुखदायी प्रतीत होने लगती है।

कैकेयी कहती है—मैं आत्मग्लानि के दुःख के कारण इतनी संतप्त हूँ कि श्रीखण्ड भी मेरे लिए दाह का ही कारण बन गया है। कोई कह सकता है कि पहले ही सोच-विचार कर काम क्यों नहीं किया? ऐसा किया होता तो आज क्यों आत्मग्लानि सहन करनी पड़ती? पर उसका उत्तर मैं दे चुकी हूँ। मैं अनुचित मोह में फँस गई थी। उसी मोह के फल आज मेरे आगे आ रहे हैं और आग बनकर जल रहे हैं। मैं उस आग में झुलस रही हूँ।

शास्त्र में कहा है कि उत्तम जाति वाला और उत्तम कुल वाला ही अपने पाप की आलोचना कर सकता है। नीच जाति और नीच कुल वाला तो उल्टा अपने पापों को छिपाने का प्रयत्न करता है। कैकेयी जातिमान् थी, इस कारण वह अपना पाप स्पष्ट रूप से स्वीकार कर रही है।

वह कहती है—मैं अपने अपराध का दंड अनिच्छा से भोग चुकी हूँ और इच्छा से अब भोगूँगी। मैं अपराध से

नहीं डरी तो उसके दंड से मुझे क्यों डरना चाहिए ! अपराध का निस्तार उचित दंड भोगने से ही होगा। अपराध का दंड न लेना अपने प्रति जगत् की घृणा लेना होगा। लोग गंगा और वरुण से अपना पाप मिटाना चाहते हैं पर मैं इस तरह नहीं मिटाना चाहती। मैं प्रायश्चित्त लेकर ही निष्पाप बनना चाहती हूँ।

हे राम ! मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ ! कहते लज्जा होती है, फिर भी कहती हूं कि अगर मुझे चिरनरक मिलता हो तो मैं अपना पाप धोने के लिए उसे भी स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। मैं नरक में जाने में जरा भी देर नहीं करूँगी। मैं ही देर करूंगी तो फिर नरक में कौन आयगा ! मुझे डरना था तो पाप से डरना था। जब पाप से नहीं डरी तो नरक जाने से डरने की क्या आवश्यकता है ?

आप नरक को अच्छा समझते हैं या बुरा समझते हैं ? नरक का नाम सुनते ही आपके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर आप यह नहीं जानते कि नरक वह धाम है जहाँ आत्मा अपने पापों का प्रक्षालन करता है। नरक में आत्मा अपने चिरकालीन पापों का प्रायश्चित्त करता है और पाप के भार से हल्का हो जाता है। विवेकवान् पुरुष नरक जाने योग्य कार्यों से डरता है, नरक से नहीं डरता। अशुचि से दूर रहना उचित . फिर भी अशुचि का स्पर्श होने पर शुद्धि करना पड़ता । शुद्धि से डरने वाला अपवित्र बना रहता

है। यही बात नरक के विषय में समझना चाहिये। अगर आप नरक से डरते हैं तो नरक में जाने योग्य कार्यों से बचें। अगर ऐसे कार्यों से नहीं बचते तो नरक में जाने से क्यों घबराते हैं ? वहाँ उन पापों का प्रायश्चित्त होगा। इसके अतिरिक्त घबराने से होगा भी क्या ? मनुष्य के कार्य उसे नरक में ले ही जाएँगे, फिर कायरता दिखलाने से लाभ क्या होगा ?

कैकेयी कहती है—मैं नरक में जाऊँगी तब भी मेरे पाप का प्रतिशोध होना कठिन है, क्यों कि मैंने घोर पाप किया है। कोई यह कह सकता है कि अब मैं राम को लेने के लिए आई हूँ, इस कारण मुझे नरक नहीं वरन् स्वर्ग मिलेगा। लेकिन स्वर्ग मेरे लिये महान दंड होगा। वह पाप को बढ़ाने वाला है और पुण्य को क्षीण करने वाला है। इस दृष्टि से वह नरक से भी बुरा है। मैं ऐसे स्वर्ग को लेकर क्या करूँगी ?

कवि का उद्देश्य यह सब बातें कैकेयी के मुख से कहला कर जनता को उपदेश देना है। इसका तात्पर्य यह है कि कैकेयी और भरत जैसे भी अपने दुष्कृत की निन्दा करते हैं तो पापों में डूबे रहने वालों को कितनी आत्मनिन्दा करनी चाहिये ? आप भरत या कैकेयी जैसे भी नहीं हैं, लेकिन उनके बराबर भी अपने पापों की निन्दा करते हैं ? उन्होंने अपना पाप [illegible] खुलकर प्रकट किया है। इसी कारण वे बड़े हुए [illegible] छिपाकर

रखने वाला कैसे महान् बन सकता है ?

कैकेयी कहती है—'वत्स ! मेरा कलेजा कितना कठोर हो गया था कि मैंने तुम्हें राज्य से वंचित किया और तुम्हें वन आना पड़ा। तुम्हें वन जाते देखकर भी जो हृदय पिघला नहीं, उसे स्वर्ग पाने का अधिकार ही क्या है ? इतनी कठोरता भी अगर नरक में न ले जायगी तो नरक का दरवाजा ही बंद हो जायगा। अगर तुम यह कहना चाहो कि मेरा पाप समाप्त हो गया है तो फिर तुम्हें वन में रहने की क्या आवश्यकता है ? तुम्हारे अयोध्या लौटने पर ही मैं अपना पाप समाप्त होना समझ सकती हूँ। तुम न लौटोगे तो कौन मानेगा कि मेरा पाप चला गया।'

जब लोग किसी महात्मा का उपदेश सुनते हैं या चरित पढ़ते हैं तो अकसर सोचने लगते हैं कि मैंने बड़ा पाप किया है ! उनमें से कई अपने आपको धिक्कारने भी लगते हैं। उनकी पश्चात्ताप की भावना स्थायी नहीं रहती। उनके जीवन पर उस पश्चात्ताप का कोई व्यावहारिक असर नहीं पड़ता। परिणाम यह होता है कि जिस कृत्य के लिए वे पश्चात्ताप करते थे, वही कृत्य थोड़ी देर बाद फिर करने लगते हैं। उनका आत्मा उज्ज्वल नहीं हो पाता। इसके विपरीत जिनके हृदय पर गहरे पश्चात्ताप का स्थायी प्रभाव पड़ता है, वे पाप के भार से हल्के हो जाते हैं। वे भविष्य में पाप से बचने की भरसक चेष्टा तो करते ही रहते हैं साथ ही भूतकाल के पापों को

भी घी डालते हैं। पश्चात्ताप वह अग्नि है, जिसमें पाप का मैल भस्म हो जाता है और आत्मा, स्वर्ण की भाँति निर्मल बन जाता है। भक्तजन कहते हैं:—

प्रभुजी ! मेरो मन हठ न तजे।
निसि दिन देउं नाथ ! सिख बहु विध,
करत स्वभाव निजे।
ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति,
दारुण दुख उपजे।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल शठ,
पुनि खल-पतिहि भजे।
लोलुप अति भ्रमत गृहपशु ज्यों,
सिर पद त्राण बजे।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग,
कबहुँ न मूढ़ लजे।
हौं हार्यो करि जतन बहुत विध,
अतिशय प्रबल अजे।
तुलसीदास बस होई तब,
जब प्रेरक बरजे,

भक्त कहते हैं—प्रभो ! मेरा मन ऐसा हठीला है कि रात-दिन समझाने पर भी वह नहीं समझता है। पशु और स्त्री जैसे भूल करता है, मेरा मन भी वैसी ही गलती करता है। स्त्री जब सन्तान का प्रसव करती है और प्रसव की पीड़ा से

बेचैन हो जाती है तो सोचती है कि अब कभी गर्भ धारण नहीं करूँगी। मगर थोड़े दिनों बाद ही वह अपने निश्चय को भूल जाती है और पति को भजने लगती है। जैसे कुत्ता घर-घर भटकता है और जहाँ जाता है वहाँ मार खाता है। फिर भी वह फिर उसी घर में जा पहुँचता है। वह घरों में जाना नहीं छोड़ता। मेरा मन भी इन्हीं के समान है। वह बार-बार उसी ओर जाता है जहाँ न जाने का उसने विचार किया था। कुत्ता तो रोटी का टुकड़ा पाने के लोभ से भटकता है, पर मन कुत्ते से भी गया-बीता होता है। वह रोटी की आवश्यकता न होने पर भी उस मार्ग में जाता है, जहाँ जूते पड़ते हैं! मन को रोकने के लिए मैंने अनेक उपाय किये हैं, फिर भी वह अपना हठ नहीं छोड़ता। उसका हठ तभी छूट सकता है जब, हे प्रभो! तू मन में बस जाय। मन में तू बस जायगा तो मन वश में हो जायगा।

अगर आपका मन भी ऐसा ही हठी हो तो आपको भी परमात्मा से यही प्रार्थना करनी चाहिए। आपको भी कैकेयी की तरह अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए।

कड़ा सोने का ही होता है, फिर भी कड़ा अशाश्वत और सोना शाश्वत कहलाता है। * सोना द्रव्य और कड़ा पर्याय

---

* यद्यपि सोना भी पर्याय ही है और इस कारण वह भी अशाश्वत ही है, तथापि [illegible] है और स्थूल पर्याय रूप है [illegible] द्रव्य [illegible]

है। लेकिन लोग द्रव्य को भूल कर पर्याय को ही पकड़ रहे हैं। पर्याय को ही पकड़ने और द्रव्य को भूल जाने के कारण ही आज मनुष्य-मनुष्य में भी अनुचित भेद माना जाता है। लेकिन किसी भी प्रकार के एकान्त से कल्याण नहीं हो सकता। पर्याय के साथ शाश्वत द्रव्य को समझने वाला सम्पत्ति और विपत्ति को समान समझता है।

राम वन में हैं। एक प्रतिष्ठित और सुख में पले हुए पुरुष के लिए वन-फल खाना, भूमि पर सोना और छाल के वस्त्र पहनना कितना कष्टकर होना होगा? ऐसी स्थिति में पड़ा हुआ पुरुष अगर पर्याय को ही पकड़ ले और द्रव्य को भूल जाय तो उसके दुःख की सीमा नहीं रहेगी। लेकिन राम दुःख से बचे रहे। इसका कारण यही है कि वे द्रव्य को भलीभांति जानते थे-उन्होंने शाश्वत सत्य को पहचान लिया था। अपनी इसी जानकारी के कारण वे इस स्थिति में भी आनन्द अनुभव करते थे।

कैकेयी कहती है—'तुम शीघ्र अयोध्या लौट चलो। सैर करने के लिए या मुनिपद धारण करके तुम वन में नहीं आये हो। भरत का दुःख मिटाने के उद्देश्य से तुम्हें यहाँ आना पड़ा है। मगर अब तुम्हारे यहाँ रहने से भरत को दुःख हो रहा है, अतएव फिर एक बार उसका दुःख मिटाओ और अयोध्या चलो। देखो, मैं कैसी निष्ठुर हूँ कि मैंने तुम्हें ऐसे कष्ट में डाल दिया।'

'मैं अब तक भरत को ही सब से अधिक प्रिय मानती थी। मोह-वश मैं समझती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे अधिक प्रिय होना चाहिए। अपने प्रिय के लिए सब कुछ किया जाता है। इसी लिए मैंने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिए वर-दान में राज्य न मांगा तो फिर वर मांगना ही किस काम का! लेकिन भरत ने मेरी भूल मुझे सुझा दी है। भरत ने अपने व्यवहार से मुझे सिखा दिया है कि-'अगर मैं तुम्हें प्रिय हूँ तो राम मुझे प्रिय हैं। तू मेरे प्रिय को मुझसे छुड़ाकर मुझे सुखी कैसे कर सकती है? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है। मुझसे राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है। राज्य मुझे प्यारा नहीं, राम प्यारे हैं।' इस प्रकार भरत के समझाने से मैं समझ गई हूँ कि अपने प्रिय राम के बिछुड़ने से भरत निष्प्राण-सा हो रहा है। राम! तुम मेरे प्रिय के प्रिय हो तो मेरे लिए दुगुने प्रिय हो। अब मुझे छोड़कर अलग नहीं रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे रहते ही भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत भी मेरा नहीं रह सकता।'

लोग तुच्छ चीजों के लिए भी परमात्मा को भूलते नहीं हिचकते। कैकेयी ने तो पहले से धरोहर रक्खे वर से ही अपने बेटे के लिए राज्य मांगा था, लेकिन संसार में ऐसे भी लोग हैं जो धर्मात्मा कहलाते हुए भी पाप करते हैं। निज की स्त्री को कष्ट में डालकर परस्त्री के ...

अपनी जाति तथा अपने धर्म को लजाते हैं। पर की सम्पत्ति को हड़प जाने वालों की क्या कमी है? ऐसे लोगों को उस कैकेयी के समान भी कैसे कहा जा सकता है, जिसने भरत के लिए राज्य मांगा था! कैकेयी ने अपनी बुराई की जिस प्रकार निन्दा की है, उसी प्रकार निन्दा करके अपनी-अपनी बुराइयों को छोड़ने से ही कल्याण हो सकता है।

कैकेयी कहती है-'राम! मैं नहीं जानती थी कि भरत मेरा नहीं, राम का है। अगर मैं जानती कि मैं राम की गई सभी भरत मेरा है, नहीं तो भरत भी मेरा नहीं है तो मैं तुम्हारा राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत, राम को छोड़ने वाली माता को छोड़ देगा!'

अगर आपके माता-पिता परमात्मा का परित्याग करें और स्थिति ऐसी हो कि आपको माता-पिता या परमात्मा में से किसी एक को ही चुनना पड़े तो आप किसे चुनेंगे? माता पिता का परित्याग करेंगे या परमात्मा का? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यों न हो, उसका त्याग किये बिना कल्याण नहीं हो सकता।

कैकेयी फिर कहने लगी-'मुझे पहले नहीं मालूम था कि तुम भरत को अपने से भी बढ़कर मानते हो। काश! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिए इतना महान कष्ट उठा सकते हो! ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य छीनने की हिम्मत किसमें था, खास तौर पर जब [illegible]

तैयार हैं। सब का सब पर अपार स्नेह है। तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही संसार पर प्रकट हुआ है। इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य-सा हो गया है और मुझे संतोष दे रहा है। भले ही मैंने अपनी ओर से अप्रशस्त कार्य किया किन्तु फल उसका यह हुआ है कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगों को स्मरण करेंगे। कीचड़ कीचड़ ही है, किन्तु कमल उत्पन्न होने पर कीचड़ की भी शोभा बढ़ जाती है। मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया। मैं अच्छी या बुरी, जैसी भी हूँ सो हूँ। मगर तुम्हारा अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध है। मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ में है। अयोध्या लौटने पर ही उसकी रक्षा होगी। अन्यथा मेरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा है वह बंद न होगा।'

कैकेयी का पाप प्रकट हो चुका था पर आपका पाप क्या छिपा रहेगा? अगर ऐसा है तो फिर यह प्रार्थना करने की आवश्यकता ही क्या है कि—हे प्रभो! मुझ पापी का उद्धार कर। शास्त्र में कहा है कि आस्रव अच्छे निमित्त मिलने पर संवर के रूप में पलट सकता है। इसीलिए कैकेयी कहती है कि मैंने की तो थी बुराई मगर उसमें से भलाई निकली।

कैकेयी फिर कहती है—'मुझे नहीं मालूम था कि राम ऐसा त्यागी है कि राज्य को तुच्छ समझ कर जंगल का रास्ता पकड़ सकता है। मैं यह भी नहीं जानती थी कि भरत को राम इतने प्रिय हैं। लक्ष्मण ऐसा वीर है कि उससे सारा

संसार काँप सकता है, लेकिन वह इतना सीधा बन जायगा, यह तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। शत्रुघ्न का भी क्या पता था कि उनमें भी तुम्हीं लोगों के गुण भरे हैं। और यह सुकुमारी सीता, जो महाराज जनक के घर उत्पन्न हुई और अवधेश के घर बिवाही गई: वनवास के योग्य वस्त्र पहनने में अपना गौरव और आनन्द मानेगी, यह भी कौन जानता था? आज सीता को देखकर हृदय भर आता है। और जब देखती हूँ कि उसकी मुझपर अब भी वैसी ही श्रद्धा और प्रीति है तो मैं बेचैन हो जाती हूँ कि मैंने इसे भी कष्ट में डाल दिया!

मनुष्य से भूल हो जाना अचरज की बात नहीं है। भूल हो जाती है मगर भूल को सुधारने में संकोच करना पतन का कारण है। भूल सुधारते समय की ऊँची भावना मनुष्य को ऊँचा उठा देती है।

कैकेयी में अपनी भूल को सुधारने का साहस था। इसी कारण उसने बिगड़ी बात बना ली। वह कहती है-राम! मैं तर्क नहीं जानती। मुझे वादविवाद करना नहीं आता। मैं राजनीति से अनभिज्ञ हूँ। मेरे पास सिर्फ अधीर हृदय है। अधीर हृदय लेकर तुम्हारे सामने आई हूँ। मैं माता हूँ और तुम मेरे लड़के हो, फिर भी मैं प्रार्थना करती हूँ कि अब अयोध्या लौट चलो। 'गई सो गई अब राख रही को।' बीती बात को बार-बार याद करके वर्त्तमान की रक्षा न करना

राम का उत्तर

——::::():::——

महारानी कैकेयी ने अत्यन्त सरल और स्वच्छ हृदय से अपने पाप के लिए पश्चात्ताप किया। राम ने सोचा—'माता को हृदय का गुब्बार निकाल लेने दिया जाय तो उनका जी हलका हो जायगा।' अतएव वे चुपचाप उनका कहना सुनते रहे। कैकेयी का कथन समाप्त हो गया।

राम ने मुस्किराते हुए कहा—'माताजी! बचपन से ही आपका मातृसुलभ स्नेह मुझ पर रहा है और अब भी वह वैसा ही है। आप माता हैं, मैं आपका पुत्र हूँ। माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नहीं होना चाहिए। आपने ऐसा किया ही क्या है, जिसके लिए इतना खेद और पश्चात्ताप करना पड़े। राज्य कोई बड़ी चीज़ नहीं है और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने माँगा था, किसी ग़ैर के लिए नहीं। जब मैं और भरत दो नहीं हैं तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कौन राजा है और कौन नहीं? इतनी साधारण-सी बात को बहुत अधिक महत्व मिल गया है। आप चिन्ता न करें। मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है। भरत ने एक जिम्मेवरी लेकर

मुझे दूसरा काम करने के लिए स्वतंत्र कर दिया है। मेरे लिए यह प्रसन्नता की बात है। मेरा सौभाग्य है कि मेरा छोटा भाई भरत इस योग्य साबित हुआ है कि वह मेरे कार्य में सहायक हो सका।'

'माताजी! जहाँ माँ-बेटे का संबंध हो वहाँ इतनी अधिक लम्बी बातचीत की आवश्यकता ही नहीं है। आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मैं अवध को लौट चलूं। लेकिन यह बात कहना माता के लिए उचित नहीं है। आप शान्त और स्थिरचित्त होकर विचार करें कि ऐसी आज्ञा देना क्या ठीक होगा? आपकी आज्ञा मुझे सदैव शिरोधार्य है। माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का साधारण कर्त्तव्य है। लेकिन माता! तुम्हीं ने मुझे पाल-पोस कर एक विशिष्ट साँचे में ढाला है। मुझे इस योग्य बनाया है। इसलिए मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ही मगर निवेदन यह है कि आप उस साँचे को न भूलें, जिसमें आपने मुझे ढाला है। मेरे लिए एक ओर आप और दूसरी ओर संसार है। सारे संसार की उपेक्षा करके भी मैं आपकी आज्ञा मानना उचित समझूँगा।'

नेपोलियन भी कहा करता था कि संसार का प्यार और संसार की बड़ाई एक ओर है और माता का प्यार तथा माता की बड़ाई दूसरी ओर है। इन दोनों में से माता का प्यार और माता की बड़ाई का ही पलड़ा भारी होगा

राम कहते हैं—माताजी! आपका आदेश मेरे लिए सब से बड़ा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बड़ा पाप होगा। लेकिन यह बात आप स्वयं सोच लें कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए! आप मुझ से अवध चलने को कहती हैं, यह तो आप अपनी ही आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं। मैंने आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए ही वनवास स्वीकार किया है। क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा? इस साँचे में आपने मुझे ढाला ही नहीं है। रघुवंश की महारानियाँ एक बार जो आज्ञा देती हैं, फिर उसका कदापि उल्लंघन नहीं करतीं।

'आप कह सकती हैं कि क्या मेरा और भरत का आना निष्फल ही हुआ? लेकिन यह बात नहीं है। आपका आगमन सफल हुआ है। यहाँ आने पर ही आपको मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर है। पहले आप सोचती होंगी कि वन में राम आदि दुखी हैं, यहाँ आने पर आपको मालूम हो गया कि हम तीनों यहाँ सुखी हैं। क्या आपको हम तीनों के चेहरे पर कहीं दुःख की रेखा भी दिखाई देती है? हमने संसार को यह दिखा दिया है कि सुख अपने मन में है-वह कहीं बाहर से नहीं आता।'

धन-वैभव आदि सुख-सामग्री होने पर भी बहुत-से लोगों को रोना पड़ता है। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि उनके मन में सुख नहीं है। जब भीतर सुख नहीं

होता तो बाहर की सुख-सामग्री और अधिक दुखदायी हो जाती है। कोई आदमी हजारों के आभूषण पहने हो और उस समय उसे लुटेरे मिल जाएँ तो वही आभूषण दुखप्रद सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत अगर किसी फ़क़ीर को लुटेरे मिलें तो उसे क्या चिन्ता होगी? असली आनन्द तो तब है जब लुटने की अवस्था में भी वैसी ही मनोभावना बनी रहे जैसी धनप्राप्ति के समय होती है। शास्त्र में कहा है कि महात्माओं को घास के संथारे पर भी जैसा आनन्द-अनुभव होता है, वैसा चक्रवर्ती को भी न होता होगा। एक वर्ष का दीक्षित साधु भी सर्वार्थसिद्ध विमान के सुख को लांघ जाता है। इसका कारण यही है कि उसका मन उसके अधीन हो जाता है।

वस्तुतः सुख और दुख मानसिक संवेदनाएँ हैं। मन ही सुख-दुख का सर्जक है। सुख की बाह्य सामग्री चाहे जितनी प्राप्त की जाय, सुख पूरा नहीं होगा। कोई न कोई अभाव खटकता ही रहेगा। अगर मन को संतुष्ट और मस्त बना लिया जाय तो अवश्य ही सुख की पूर्णता हो सकती है, क्योंकि जो कुछ भी प्राप्त होगा उसी में मन मस्त हो रहेगा। इसी तथ्य को समझकर विवेकशील पुरुष सुख-सामग्री का परित्याग करके भी मानसिक संतोष का अद्भुत आनन्द उठाते हैं।

राम कहते हैं—माता! यह आकर आपने देख लिया है कि राम और लक्ष्मण और जानकी दुखी नहीं हैं, वरन सन्तुष्ट

और सुखी हैं। इसलिए आपका आना निरर्थक नहीं हुआ। अगर अब भी आपको हमारी बात पर विश्वास न होता हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला देंगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति में आनन्दमय ही रहते हैं—कभी दुखी नहीं होते। सूर्यकुल में जन्म लेने वालों की यह प्रतिज्ञा होती है कि वे प्राण जाते समय भी आनन्द मानें, लेकिन वचन-भंग होते समय प्राण जाने की अपेक्षा अधिक दुःख मानें। पिताजी ने भी यही कहा था। ऐसी दशा में आप अयोध्या ले चलकर मेरे प्रण का भंग करेंगी और मुझे दुख में डालेंगी ? अगर आप सूर्यकुल की परम्परा को कायम रहने देना चाहें और मेरे प्रण को भंग न होने देना चाहें तो अयोध्या लौटने का आग्रह न करें। साथ ही साथ-आत्मग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दें। मैं स्वेच्छा से ही वन-वास कर रहा हूँ। इसमें आपका कोई दोष नहीं है, विशेषतः इस दशा में जब कि आप स्वयं आकर अयोध्या लौटने का आग्रह करती हैं और मैं वन में रहना पसंद करता हूँ, आपको दोष कैसे हो सकता है !

माता ! मैंने जो कुछ कहा है, स्वच्छ अन्तःकरण से कहा है। आप इस पर विश्वास कीजिए। अगर आपको मेरे कथन पर विश्वास न आता हो तो भरत से निर्णय करा लीजिए। भरत बतलावें कि प्रण का त्याग करना उचित है या राज्य का त्याग करना उचित है ? मेरा कथन ठीक है या आपका कथन ? भरत का निर्णय हमें मान्य होना चाहिए।

[illegible] पर [illegible] डाल सकता है। भरत ने इसके
न्याय का भार डाल दिया। अगर भरत [illegible]
[illegible] कि आपको [illegible] और [illegible]
? लेकिन भरत ऐसे नहीं थे कि स्वार्थ के कारण न्याय को
[illegible] है। सच्चा मनुष्य वही है जो कठिन से कठिन प्रसंग
में न्याय को याद रखता है और सत्य पर स्थिर रहता है।

राम ने भरत से कहा—भाई भरत! मैं तुम्हीं को निर्णायक
नियत करता हूँ। मैं अपना पक्ष तुम्हें समझाए देता हूँ।
ध्यानपूर्वक सुन लो और फिर उचित निर्णय देना।

यह कहता है—राम हाथ जोड़कर राजाओं से प्रार्थना
करते हैं कि मैं सामान्य धर्म की मर्यादा बांधने के लिए जन्मा
। इसलिए जब अवसर आवे तब इस मर्यादा की रक्षा
करना।

राम कहते हैं—सभी लोग विशेष धर्म का पालन नहीं कर
सकते, किन्तु सामान्य धर्म का पालन करना सभी के लिए
आवश्यक है। सामान्य धर्म का पालन करने से संसार का
कोई काम नहीं रुकता और आत्मा का पतन भी नहीं होता।
उदाहरणार्थ-'संथारा' ग्रहण करना विशेष धर्म है, जिसका
पालन सब नहीं कर सकते, लेकिन मांस न खाना सामान्य
धर्म है। इसका पालन करने से किसी का कोई काम नहीं
रुकता और दुर्गति भी नहीं होती।

राम भरत से कहते हैं—भरत! तुम इस बात प

ध्यान रखकर निर्णय करो कि मैं संसार में क्या करने के लिए जन्मा हूँ ? अर्थात् मेरे जीवन का ध्येय क्या है ? मुझे लोग मर्यादापुरुषोत्तम कहते हैं। मर्यादा की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है और होना चाहिए। मैं सामान्य धर्म की मर्यादा को दृढ़ बनाना चाहता हूँ और जगत् को बताना चाहता हूँ कि सामान्य धर्म की मर्यादा सदा रक्षणीय है।'

संसार में एक विकट तूफान आया हुआ है। वह और कुछ नहीं, फैशन का तूफान है। कहावत है—

सादगी आबादी, फैशन की बर्बादी।

सादगी के लिए राम ने वल्कल वस्त्र धारण किये थे, पैदल चले थे और वन में भटके थे।

राम ने तो इतना किया था परन्तु आप क्या करते हैं ? आपको हाथ के वस्त्र पसंद हैं या मिल के ? राम पेड़ की छाल इसलिए पहनते थे कि वह स्वतंत्रता से मिल जाती थी और अपने ही हाथ से उसे वस्त्र के योग्य बनाया जा सकता था। लेकिन आपको तो मोटे वस्त्र भी नहीं सुहाते ! आपको बारीक से बारीक वस्त्र चाहिए ! कौन परवाह करता है कि इससे स्वाधीनता का घात होता है, पाप अधिक होता है और संस्कार बिगड़ते हैं, साथ ही कला का भी नाश होता है। हाथ से बनने वाले वस्त्रों में अगर आटा लगता होगा तो मिल के कपड़ों में चर्बी लगती है। अब सहज ही जाना जा सकता है कि आटा बुरा है या चर्बी बुरी है ?

राम कहते हैं—'भरत ! मैं यहाँ सादगीमय जीवन विताने आया हूँ और आप दुःख सहन करके दूसरों को सुख उपजाना चाहता हूँ।'

जरा विचार कीजिए, सुख लेने से सुख होता है या सुख देने से सुख होता है ? सुख दाता को है या याचक को ? सुख वही दे सकता है जिसके पास सुख हो। जिसके पास जो वस्तु है ही नहीं वह दूसरों को किस प्रकार देगा ? कहा भी है—

जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम् ।
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

अर्थात्—यह बात संसार में प्रसिद्ध है कि जो चीज़ मौजूद होती है वही दी जाती है। कोई किसी को खरगोश के सींग नहीं दे सकता।

राम कहते हैं—दूसरों का दिया हुआ दुख भी मेरे पास आकर सुख ही बन जाता है, उसी प्रकार जैसे सागर में गिरी हुई अग्नि शीतल हो जाती है। इस प्रकार दूसरे के पास जो दुख था, वह चला जाता है और उसे मैं सुख दे देता हूँ। महापुरुष दूसरे का दुख लेने और उसे सुख देने के लिये सभी कुछ त्याग देते हैं। शास्त्र में कहा भी है—

चइत्ता भारहं वासं ।

अर्थात्—शांतिनाथ भगवान् ने संसार को सुख देने के

लिए भरतखंड का एकच्छत्र साम्राज्य त्याग दिया था।

राम कहते हैं—मनुष्य को क्या करना चाहिए और किस प्रकार रहना चाहिए, यह नाटक दिखाने के लिए मैं वन में आया हूँ। मैं मानव-जीवन का यह नाटक खेलना चाहता हूँ जो दुखी जनों के लिए अवलम्बन रूप होगा। मैं मनुष्य के साथ मनुष्य का और मनुष्यता का संबंध जोड़ने यहाँ आया हूँ, संबंध तोड़ने के लिए नहीं आया। मेरा काम यह नहीं है जो दर्जी की कैंची का होता है, वरन् मैं दर्जी की सुई का काम करने आया हूँ। अर्थात् संबंध को तोड़ने नहीं किन्तु जोड़ने के लिए आया हूँ। संसार रूपी वन में बिना काम के झाड़ खड़े हैं, उन्हें इसलिए छाँटने आया हूँ कि वे बढ़ने योग्य वृक्षों की वृद्धि में बाधक न बनें। मेरा उद्देश्य राजसी वैभव को भोगना नहीं है और न मैं भोग को जीवन का आदर्श बतलाना चाहता हूँ। मैं आत्मा रूपी हंस को मुक्ति रूपी मोती चुगाने के लिए प्रयत्नशील हूँ। संसार को आनन्द का असली मार्ग बतलाना मेरा जीवन-मंत्र है। इन बातों पर ध्यान रखकर अपना निर्णय देना। भरत! मैंने अपने जीवन की साध तुम्हारे सामने प्रकट कर दी है। मुझे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करना तुम्हारा काम है।

रानी कैकेयी और भरत ने राम का वक्तव्य सुना। उनके वक्तव्य से महापुरुष के चरण पकड़ और उन्हें स्वीकृत करने की प्रतिज्ञा कर [illegible]

हुआ है। फिर अयोध्या का त्याग करके वन का ही कल्याण करना कहां तक उचित है?

भरत ने इस प्रकार एक बड़ा सवाल पैदा कर दिया, लेकिन सामने राम हैं। वह कहते हैं-भाई भरत! तुम्हारा कहना ठीक है और मर्म से भरा हुआ है। अगर कोई राज्य करता हुआ अपना और जगत् का कल्याण न कर सकता हो तो उसे वन ही में चला जाना चाहिए, लेकिन ऐसी बात नहीं है। राज्य करते हुए भी अपना और दूसरों का लौकिक कल्याण किया जा सकता है।'

'भरत- तो फिर आपके अयोध्या लौटने में क्या बाधा है? आप राज्य भी कीजिए और स्व-पर का कल्याण भी कीजिए!'

राम-' मैं सब राजाओं के लिए यह नीति नहीं बतलाता कि उन्हें राज्य करने से पूर्व वन जाना ही चाहिए। तुम मूल बात भूल रहे हो। अयोध्या में रहकर राज्य संचालन की नीति सिखाने से ही मेरा काम पूरा हो सकता तो पिताजी मेरा राज्य तुम्हें क्यों देते? और मुझे वन में आने का विचार क्यों करना पड़ता? मेरी तरह सब राजाओं को वन जाने की आवश्यकता नहीं है मगर किसी को वन का भी कार्य करना चाहिए। अगर तुम्हारी नीति के अनुसार कोई भी वन न जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि वन जाना बुरा है। अगर वास्तव में वन जाना बुरा होता तो पहले के अनेक राजा राज्य त्याग कर वन में क्यों जाते? मैं राज्य त्याग कर वन में आया

हैं। अब यदि फिर अयोध्या लौट-चलूँ तो लोग यह सीखेंगे कि वन जाना बुरा है और जो कुछ लाभ है सो राज्य करने में ही है। लोग कहेंगे-अगर वन जाने में अच्छाई होती तो राम वन को त्याग कर अयोध्या क्यों लौटते!'

कई लोग कहा करते हैं-साधु बनने में क्या रक्खा है? घर पर रहकर भी कल्याण किया जा सकता है। मगर घर रहकर अगर कल्याण किया जा सकता है तो क्या साधु होना बुरा है? क्या साधु बन कर विशेष कल्याण नहीं किया जा सकता? अगर साधु होने पर विशेष कल्याण की संभावना है और साधु बनना बुरा नहीं है तो साधु बनने का विरोध क्यों किया जाता है? इसके अतिरिक्त जब चार आश्रम बतलाये गये तो चौथे आश्रम का विरोध करने की क्या आवश्यकता है? चारों आश्रम और चारों वर्ण होने पर ही संसार की सुव्यवस्था हो सकती है।

इसीलिए राम कहते हैं-'अगर मैं अयोध्या लौट चलूँ तो सब यही समझेंगे कि वन जाना बुरा है। क्या निर्जन वन में जाने पर भजन-चिन्तन ही संभव है—और कोई काम नहीं हो सकता? लोग समझते हैं कि जो संसार का और कोई कार्य नहीं कर सकते वही वन जाकर ध्यान, मौन, जप, तप, आदि करते हैं। अर्थात् संसार के संबंध में जो कायर हैं उन्हीं को वन जाना चाहिए लेकिन वास्तव में यह विचार अपूर्ण है संसार को यह ज्ञान बतलाने की आवश्यकता है

कि कोई कैसा भी क्यों न हो, एकान्त में निवास किये बिना उसे निज-धर्म का पता नहीं लग सकता। और निज धर्म को जाने बिना कोई भी काम उचित रूप से नहीं हो सकता। निज धर्म का ज्ञान न होने पर प्रत्येक कार्य में निर्बलता का अनुभव होता है। वस्तुतः एकान्त का सेवन किये बिना किसी में बड़े काम करने योग्य बल और बुद्धि नहीं आती।'

'भरत! राजाओं पर अपनी प्रजा का ही भार होता है किन्तु मेरे सिर पर संसार का भार है। यह महान् उत्तरदायित्व एकान्त सेवन किये बिना मैं पूर्ण नहीं कर सकता। एकान्त-सेवन करके मैं जगत् को अपूर्व बोध देना चाहता हूँ। जो बात जब मन में होगी वही वचन से प्रकट होगी और उसी के अनुसार कार्य होगा। जो बात मन में ही नहीं आएगी वह वचन या कार्य में कैसे आ सकती है? किसी बात को भली-भांति मन में लाने के लिए एकान्त सेवन की आवश्यकता रहती है। अतएव अपनी मानसिक तैयारी के लिए भी मुझे वन में वास करने की आवश्यकता है।'

'वत्स भरत! तुम न जंगल में जन्मे हो और न जंगल में पले हो। इसी तरह मैं भी जंगल में न जन्मा हूँ और न पला हूँ। इतना होने पर भी तुम जंगल का महत्त्व नहीं जानते और मैं जानता हूँ। जंगल में एकान्त सेवन करके मैं सब बातें अपने मन में ग्रहण करूँगा। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। बहुत-से मनुष्य जंगल में बकरी तथा भेड़ों की

तरह रहकर अपनी जिंदगी पूरी करते हैं। मैं उन्हें मानवीय संस्कार देना चाहता हूँ और आर्य बनाना चाहता हूँ। उनके पास पहुँचे बिना और उनके साथ घनिष्ठ संपर्क स्थापित किये बिना यह महान् कार्य पूरा नहीं होगा।

राम के उच्च और आदर्श विचार सुनकर भरत ने कहा-'आप वर्त्तमान जगत् में अनुपम पुरुष हैं। आपका अपनापन सारे संसार में फैला हुआ है। संसार के प्राणी मात्र को आप अपना समझते हैं। आपका यह विशालतम अपनापन अयोध्या में नहीं समा सकता। यह बात मैं समझ रहा हूँ। मगर एक बात मैं निवेदन करना चाहता हूँ। आप जिस कार्य को पूर्ण करने के लिए वन में रहना आवश्यक मानते हैं वह कार्य मुझे सौंप दीजिए। मैं आपका कार्य करूँगा और आप अयोध्या लौट जाइए। कदाचित् मुझ अकेले को इस कार्य के लिए असमर्थ समझते हों तो लक्ष्मण को मेरे साथ रहने दीजिए। अगर दोनों से भी वह कार्य होना संभव न हो तो शत्रुघ्न को भी साथ कर दीजिए। हम तीनों मिलकर वन का काम करेंगे और आप अवध का राज्य कीजिए।'

भरत का यह विचार ओजस्वी और उदार था। लेकिन राम ने कहा-भाई भरत! तुमने भ्रातृप्रेम, त्याग और भावुकता की हद कर डाली। तुम इन गुणों में मुझसे भी आगे बढ़ गये हो पर तुम्हारी बात मानकर अगर मैं लौट गया तो दुनिया क्या कहेगी? हम और तुम तो समझ जाएँगे

लेकिन संसार को कौन समझाने बैठेगा ? मुझे यद्यपि अपयश की चिन्ता नहीं है फिर भी लोग इस घटना से स्वार्थ-सिद्धि की शिक्षा लेंगे। उन्हें किस प्रकार समझाया जायगा ?'

महापुरुष अपनी आन्तरिक शक्ति से समर्थ होते हुए भी बाल और भावुक जीवों की तरह कार्य करते हैं, जिससे संसार के साधारण लोग उस क्रिया को समझ सकें। गीता में कहा है कि मूर्ख की बुद्धि का भेद न करके विद्वान् को ऐसा चरित्र बनाना चाहिए, जिसे वह ग्रहण कर सके और उसकी बुद्धि बोझ न पड़े।

आप जब छोटे बालक थे तो माँ की बराबर नहीं चल सकते थे। अगर उस समय माता आपकी उँगली पकड़कर अपने बराबर आपको चलाती तो आपकी क्या दशा होती ? मगर माता ने अपनी शक्ति का गोपन करके बालक के बराबर ही, धीरे-धीरे चलना उचित समझा और फिर आप में तीव्र गति करने की शक्ति आ गई।

राम कहते हैं-'हे भरत ! तुम्हारी और मेरी प्रकट क्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसे सब सरलता से समझ सकें और सर्वसाधारण पर कोई बुरा असर न पड़े। ऐसी स्थिति में मेरा अयोध्या में रहना और तुम्हारा वनवास करना कहाँ तक उचित होगा ?"

सीता का समाधानकौशल

——:::():::——

राम का पक्ष सुनकर भरत को चुप होना पड़ा। वह कोई उत्तर नहीं दे सके। फिर भी हृदय में असंतोष व्याप गया और उनकी आँखों से आंसू बहने लगे। कैकेयी भी दंग रह गई। वह सोचने लगी-अब मैं क्या कहूँ और क्या न कहूँ? राजसत्ता और योगसत्ता में से किसका खंडन किया जाय? दोनों के चेहरे पर विषाद घिर आया।

सीता ने यह स्थिति देखी तो उन्हें भरत और कैकेयी के प्रति बड़ी समवेदना हुई। सीता सोचने लगी—मेरे देवर बहुत दुखी हो गये हैं। वह अपने भाई की बात का उत्तर नहीं दे सकते। वह किसी प्रकार का निर्णय भी कैसे कर सकते हैं! वह किस मुँह से कह सकते हैं कि आप वन में ही रहिए और मैं राज्य करता हूँ! ऐसे विकट प्रसंग पर देवर का दुःख मिटाना चाहिए। यह सोचकर सीता एक कलश जल से भर लाईं और हाथ में लेकर राम के सामने दृष्टि लगा कर खड़ी हो गईं।

सीता को जल-कलश लिये देखकर राम कहने लगे-तुम

मेरे हृदय की बात जानने वाली हो। इस समय मुझे प्यास तो है नहीं, फिर जल किस लिए लाई हो ?

सीता ने कहा-मैं प्रयोजन के बिना कोई कार्य नहीं करती, यह आप भलीभांति जानते हैं।

राम-हां, यह तो जानता हूँ, लेकिन इस समय कलश किस लिए लाई हो ? तुम्हारे बताये बिना मैं कैसे जान सकता हूँ !

सीता—आपने निर्णय करने का भार भरत पर डाल कर ऐसी दृढ़ता के साथ अपना पक्ष रक्खा है कि आपके वन-वास करने की स्वीकृति के सिवाय और कुछ कहा ही नहीं जा सकता। लेकिन रघुकुल में उत्पन्न देवर कैसे कह सकते हैं कि—'अच्छी बात है, आप वन-वास ही कीजिए।' अपने छोटे भाई को इस प्रकार संकट में डालना आपके लिए उचित नहीं है। मेरे देवर ऐसे नहीं हैं कि अपने मुँह से आपको वन में रहने की बात कह दें।

सीता की बात सुनकर भरत प्रसन्न हुये कि भौजाई ने मेरा पक्ष लिया है। उनके चेहरे पर किंचित् प्रसन्नता नज़र आने लगी।

सीता ने अपनी बात चालू रखते हुए कहा-साथ ही मेरे पति भी ऐसे नहीं हैं जो वन में आकर नगर को लौट जाएँ।

भरत को पहली बात सुनकर जो आशा बँधी थी, वह लुप्त हो गई। वह सोचने लगे-भौजाई ने पहले तो मेरा पक्ष लिया था, पर अब यह क्या कहने लगीं ?

सीताजी की बात सुनकर राम ने कहा—तो तुम क्या करने को कहती हो ?

सीता—देवरजी पिता का दिया हुआ राज्य नहीं ले सकते। पिता का दिया राज्य तो आप ही ले सकते हैं। इसलिये पहले आप राज्य ले लीजिए और फिर अपना राज्य भरत को दे दीजिए। ऐसा करने से भरत राज्य स्वीकार कर लेंगे।

सीता की बात राम को बहुत पसन्द आई। लक्ष्मण ने भी सीता का समर्थन किया। राम ने कहा—'तुमने अच्छा मार्ग निकाला है। जानकी, इस जटिल समस्या को सुलझा कर तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारी बुद्धि धन्य है।'

सीता—'प्रभो! यह सब आपके चरणों का ही प्रताप है। मैं किस योग्य हूँ! आप मेरी प्रशंसा न करें। अपनी प्रशंसा सुनकर मुझे लज्जा होती है। लेकिन ऐसी बातों में अब विलम्ब न कीजिए। इस से अब हुआ यह वनवास बेकार है। इससे पहले अभी अपना राज्याभिषेक करें और फिर आप भरत का राज्याभिषेक करें।'

वास्तव में सती सीता का बुद्धिकौशल ही प्रशंसनीय [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

स्वागत करती ! वह कहती—मेरे पति का राज्य छीनकर अब मायाचार करने आए हैं ! हमें जंगल में भटकाने वाले यही माँ-बेटे हैं ? अब कौन-सा मुँह लेकर यहाँ आये हैं ! इसके अतिरिक्त राज्य लेने का प्रश्न उपस्थित होने पर कौन स्त्री ऐसी होगी जो पति को राज्य ले लेने की प्रेरणा न करे ! मगर सीता साध्वी पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया था। इसी कारण वह भरत के प्रति ऐसा प्रेम भाव प्रकट कर सकी। सीता का गुण थोड़े अंशों में भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज़ के न मिलने के कारण या मिली हुई चीज चली जाने के कारण कभी दुःख न होगा। इसी प्रकार राम और भरत का आंशिक अनुकरण करने से पुरुषों का भी संसार सुखमय, संतोषमय और स्नेह-मय बन सकता है।

राम का राज्याभिषेक

सीता की सराहना करके राम ने कहा-हे वन के पक्षियो ! तुम चहचहाकर मंगलगान करो। और हे पवन ! तुम धकधकर चँवर का काम करो। हे सूर्य ! और हे चन्द्र ! तुम्हारी साक्षी से मैं अवध का राज्य स्वीकार करता हूँ।'

इसी समय कोयल कूकने लगी। पवन मंद-मंद गति से बहने लगा। मंत्री ने प्रसन्न होकर कलश अपने हाथ में लिया

और राम का राज्याभिषेक किया।

भरत का पुनः राज्याभिषेक

राम का राज्याभिषेक हो चुकने के पश्चात् उन्होंने भरत से कहा-आओ अनुज, अब तुम्हारा राज्याभिषेक करें। इस समय मैं अयोध्या का राजा हूँ। तुम्हें मेरी आज्ञा माननी होगी।

भरत सोचने लगे-मैं भाई की बातों का जैसा-तैसा उत्तर दे रहा था मगर भौजाई की युक्ति के सामने तो इन्द्र को भी हार माननी पड़ेगी!

इसी समय सीता ने भरत से कहा-अगर तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता का गौरव रखना चाहते हो और अपने को भाई का सेवक मानते हो तो उनकी बात मान लो। अब संकोच मत करो।

भरत ने मस्तक नीचे झुका लिया। उनमें बोलने की शक्ति नहीं रह गई। तत्पश्चात् राम ने भरत का राज्याभिषेक किया और नारा लगाया-महाराज भरत की जय हो!

राम की इस जयध्वनि की चारों दिशाओं में प्रतिध्वनि हुई, मानों सम्पूर्ण प्रकृति ने राम का साथ दिया। सब लोग आनन्दित हुए, मगर भरत की मनोव्यथा को कौन जान सकता था? भरत के हृदय में वेदना का पूर आ गया। भरत की आंखों में, यह सोचकर आंसू आ गए कि कहाँ तो मैं राम को राज्य सौंपने आया था और कहाँ यह बला मेरे गले आ पड़ी।

हमें क्यों सानना चाहते हैं ? आप कह सकते हैं कि मैं क्यों धूल में सना रहूं ? मगर यह तो आपके भाई का दिया हुआ राज्य है। इस राज्य को सेवक की तरह चलाने में किसी प्रकार की बुराई नहीं है। ऐसी दशा में आप रोते क्यों हैं ? आपको चिन्ता और शोक का त्याग कर आनन्द मनाना चाहिए।

आप मेरा वेश देखकर चिन्ता करते हैं, मगर यह भी आपकी भूल है। मेरे वल्कल वस्त्रों को मत देखो, मेरे ललाट पर शोभित होने वाली सुहाग-बिंदी की ओर देखो। यह सुहागबिंदी मानों कहती है—मेरे रहते अगर सभी रत्न-आभूषण चले जाएं तो हर्ज की क्या बात है ? और मेरे न रहने पर रत्न-आभूषण बने भी रहे तो वह किस काम के ? मेरे कपाल पर सुहाग का चिह्न मौजूद है, फिर आप किस बात की चिन्ता करते हैं ? सुहागचिह्न के होते हुए भी अगर आप आभूषणों के लिए मेरी चिन्ता करते हैं तो आप अपने भाई की कद्र कम करते हैं। यह सुहागबिंदी आपके भाई के होने से ही है। क्या आप अपने भाई की अपेक्षा भी रत्नों को बड़ा समझते हैं ? आपका ऐसा समझना उचित नहीं होगा।

भरत ! आप प्रकृति की ओर देखो। जब गहरी रात होती है तो ओस के बूंद पृथ्वी पर गिरकर मोती के गहने बन जाते हैं। लेकिन उषा के प्रकट होते ही प्रकृति उन गहनों को पृथ्वी पर गिरा देती है। जैसे प्रकृति यह सोचती है कि इन

कैसे माता माना जाय? इसका उत्तर यह है कि नागिन दूसरों को भले ही काटती हो मगर उसका मंत्र जानने वाले के लिए तो वह खिलौना बन जाती है। उपाय जानने वाला उसे खिलौना बना सकता है। इसी तरह दुराचारिणी या वेश्या दूसरे के लिए भले बुरी हो लेकिन जो पुरुष उसे माता के समान समझेगा, उसका वह क्या कर सकती है? सदाचारिणी स्त्री को माता मानना या न मानना सरीखा है, किन्तु दुराचारिणी को माता के समान समझने की आवश्यकता है। इस तरह परस्त्री को माता मानने वाला स्वयं सदाचारी बना रहेगा और उसकी सन्तान को भाई-बहिन समझेगा। ऐसा होने पर उसके सम्भाव में वृद्धि होगी और कम से कम किसी को देह देते समय अन्याय नहीं होगा।

(२) और हे भरत! जैसे स्वस्त्री ही तुम्हारी स्त्री है, परस्त्री नहीं, उसी प्रकार स्वधन ही तुम्हारा धन है। परधन को कभी अपना मत समझना। अन्यायपूर्वक किसी का धन अपहरण मत करना।

वैसे तो जो अपना नहीं है वह सब पर है, लेकिन जैसे लड़की पराये घर जन्मी होती है, फिर भी नीति के अनुसार प्राप्त होने पर परायी नहीं रहती, उसी तरह पर होने पर भी जो धन न्याय-नीति के अनुसार अपने परिश्रम से प्राप्त किया जाता है, वह परकीय नहीं रहता, अपना हो जाता है। चोरी करना, डाका डालना या ऐसा ही कोई और अनीति का काम

करना बुरा मार्ग है और ऐसे मार्ग से प्राप्त होने वाला धन अपना नहीं-पराया है। नीति के विरुद्ध किसी भी उपाय से दूसरे का धन हरण करने की तृष्णा नहीं रखना चाहिए। इस प्रकार की तृष्णा से बड़े-बड़े राजा, शासक और व्यापारी भी अपना जीवन हार जाते हैं। इसलिए तुम अन्याय से मिलने वाले धन को धूल के समान समझना।

(३) हे भरत ! राज्य को भोग की सामग्री मत समझना, परन्तु सेवा की सामग्री मानना। जैसे गृहपति अपने गृह की रक्षा करने में ही अपने कर्त्तव्य की सार्थकता समझता है, उसी प्रकार तुम अपनी समस्त प्रजा की रक्षा करना ही अपना कर्त्तव्य समझना। भरत, प्रजा के प्रति राजा का पवित्र उत्तरदायित्व है। प्रजा का सुख तुम्हारा सुख और प्रजा का दुःख तुम्हारा दुःख होगा। राजा की मानो कोई स्वतंत्र सत्ता ही नहीं रहती। प्रजा में ही राजा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। सूर्यवंश में यही होता आया है और यही होना चाहिए।

(४) हे भरत ! तुम्हें अधिक उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। अतएव अन्त में यही कह देना पर्याप्त है कि इक्ष्वाकुवंश में हुए अनेक महान राजाओं ने जो मर्यादा कायम की है, उसे सावधान होकर पालन करना। मैं उसी मर्यादा का पालन करने के लिए वन में आया हूँ। तुम अब मेरे बनाये हुए राजा हो इसलिए मैंने जिस मर्यादा की रक्षा की